वर्ष 6, अंक 22, जून-2020
ज्येष्ठ, वि. सं. 2077, ₹ 50

मंगल विमर्श

त्रैमासिक

वादे वादे जायते तत्त्वबोधः

अंदर के पृष्ठों पर

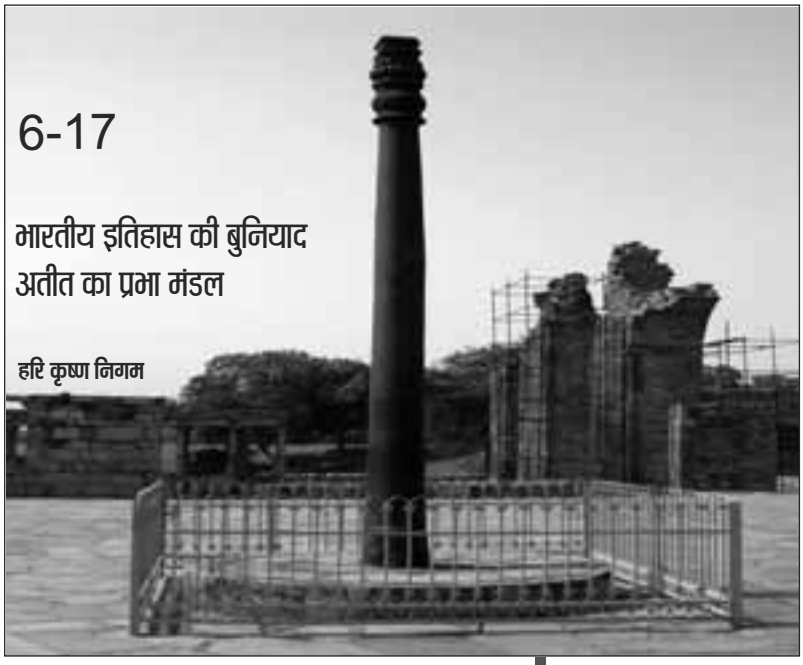

6-17

भारतीय इतिहास की बुनियाद अतीत का प्रभा मंडल

हरि कृष्ण निगम

18-27

राष्ट्रीय चेतना का स्वरूप

डॉ नंदलाल मेहता 'वागीश'

38-43

बालक की प्रथम पाठशाला है 'परिवार'

शंकर लाल महेश्वरी

44-47

बड़ा बनने के लिए अनिवार्य है उपयोगिता व सद्गुणों का विकास

सीता राम गुप्ता

28-37

श्रम संस्कृति एवं राष्ट्रवाद

ओम प्रकाश मिश्र

48-53

एक प्रलय की प्रतीक्षा

डॉ. ओम प्रभात अग्रवाल

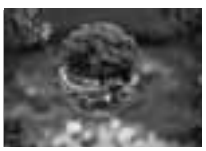

54-59

भारत में प्रदूषण संकट

डॉ. रामशरण गौड़

मुख्य संरक्षक
डॉ. बजरंग लाल गुप्ता

प्रधान संपादक
ओमीश परुथी

संपादक
सुनील पांडेय

संयुक्त संपादक
डॉ. रवींद्र अग्रवाल

प्रबंध संपादक
आदर्श गुप्ता

प्रकाशक एवं मुद्रक आदर्श गुप्ता द्वारा मंगल सृष्टि, सी-84, अहिंसा विहार, सेक्टर-9, रोहिणी, दिल्ली- 110085 से प्रकाशित तथा अंकित प्रिंटिंग प्रेस, 9326, शाही मोहल्ला, रोहताश नगर, शाहदरा-32, दिल्ली द्वारा मुद्रित।
संपादक : सुनील पांडेय

RNI
DELHIN/2015/59919
ISSN
2394-9929
ISBN
978-81-935561-8-4

फोन नं.
+91-9811166215
+91-11-42633153
ई-मेल
mangalvimarsh@gmail.com
वेब साइट
www.mangalvimarsh.in

मंगल विमर्श पत्रिका में व्यक्त विचारों के लिए रचनाकार स्वयं उत्तरदायी हैं। संपादक, मुद्रक व प्रकाशक का उनसे सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

सभी विवादों का न्याय क्षेत्र केवल दिल्ली होगा।

अथ

आज विश्व एक अभूतपूर्व त्रासद दौर से गुजर रहा है। संपूर्ण मानवता अपने अस्तित्व के लिए जूझ रही है। सतत प्रवाहमान मानव जीवन स्थगित-सा हो गया है। उसकी रफ्तार का पहिया अचानक थम गया है। स्वयं को संसार का स्वामी समझने वाला अहंकारी मानव एक अत्यंत सूक्ष्म व अदृश्य विषाणु के समक्ष असहाय महसूस कर रहा है। वैज्ञानिकों को कुछ सूझ नहीं रहा, बुद्धिजीवी हतप्रभ हैं, महाबली पस्त हैं और जन सामान्य त्रस्त है।

ओमीश परुथी
एसोसिएट प्रोफेसर (से.नि.)
प्रधान संपादक

इस कारोना काल में ऐसे-ऐसे मंजर सामने आ रहे हैं जिनकी कभी किसी ने कल्पना भी न की थी। स्कूल, कॉलेज, बाजार तो बंद होते देखे हैं, लेकिन दिग्गज देवालय, प्रतिष्ठित मस्जिदें, अमृतसर स्वर्णमंदिर, यहां तक कि पूरा वेटिकेन नगर बंद है। द्वितीय विश्व युद्ध के समय में भी रेल का पहिया नहीं थमा था, जो आज थमा पड़ा है। लाखों फैक्ट्रियाँ व व्यावसायिक प्रतिष्ठानों पर ताले जड़ दिए गए हैं, इस वज्रपात ने करोड़ों लोगों को बेरोजगार कर दिया है।

इस महामारी से गरीब व विकासशील देशों की स्थिति तो बद से बदतर हो रही है, लेकिन सर्वाधिक विकसित व महाशक्तिशाली देश अमेरिका की दुर्दशा भी देख कर सब विस्मित है। इस महामारी की विकरालता के आगे वहाँ की व्यवस्था भी चरमरा गई है। अकेले न्यूयार्क में ही हजारों मौतें प्रतिदिन हो रहीं हैं। यही स्थिति हमारे देश में मुंबई, दिल्ली, चैन्नई व अहमदाबाद में दिखाई दे रही है। दफनाने के लिए जमीन कम पड़ रही है—

हकीकत नहीं, ये अफसानें लगे हैं,
मरघट बस्तियों में समाने लगे हैं।

मौत के खौफ़ के आलम जरा देख,
लोग अपने साये से कतराने लगे हैं॥

आम आदमी भयभीत व आशंकित है। भीतर से टूट चुका है। बीमारी से बचने के इलावा उस के समक्ष बच्चों का पेट पालने की चुनौती आन खड़ी हुई है। लॉक डाउन के कारण जो जहाँ है, वहीं फँस गया है। लोग परिजनों से मिलने को व्याकुल हैं। मजबूर लोग अपने मरीज को लेकर एक से दूसरे अस्पताल में भटक रहे हैं। अकेले रह रहे बुजुर्गों की विपदा देखी नहीं जाती। भूखे प्यासे मजदूरों की गृहवापसी की अग्नि परिक्षा अकथनीय है।

इस अनसुनी व अनदेखी आपदा की विकरालता के बावजूद मानव की जिजीविषा व जीवट की अपराजेयता पर विश्वास नहीं टूटता। इतिहास साक्षी है कि मानव अनेक आपदाओं व चुनौतियों से जूझता हुआ, अंततः विजयी हुआ है। अब भी होगा। कई दौर गुजरे हैं, ये भी गुजर जाएगा।

•

लौह स्तंभ, मेहरौली, दिल्ली

पश्चिम के अनेक विचारक भारत के प्रति आशावादी रहे हैं , लेकिन हमारे ही आज के प्रबुद्ध वर्ग में कुछ लोग पहचान की शंका और दोराहे पर खड़े होकर नयी पीढ़ी में राष्ट्र के प्रति संशय के बीज बो रहे हैं। अपने देश की सभ्यता और संस्कृति की महानता को सत्यापित करने के लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं पर आज के कुछ प्रगतिशील इतिहासकारों की अपनी अलग व्याख्याओं द्वारा देश की अस्मिता पर गर्व करना तो दूर भव्य अतीत या प्राचीन गौरव की बात करने पर भी अपराधबोध कराया जा सकता है। पुरोगामी समाज और ऐतिहासिक दृष्टि के तथाकथित संरक्षक आश्चर्य नहीं पारंपरिक दृष्टिकोण को अंधराष्ट्रवादी उन्माद की संज्ञा दें।

हरि कृष्ण निगम

भारतीय इतिहास की बुनियाद अतीत का प्रभा मंडल

आज हमारे प्रबुद्ध वर्ग के एक बड़े हिस्से की नजर में, जिसकी अँग्रेजी मीडिया पर काफी अच्छी पकड़ है, देश के अतीत और पूर्वजों के विश्वासों को जरा भी महिमा-मंडित करने का प्रयत्न शायद सबसे बड़ा अपराध लग रहा है। विषाक्त राजनीतिक समीकरणों के कारण ऐसे किसी भी अध्ययन में उन्हें सांप्रदायिकता की बू आती है।

एक राष्ट्र, एक संस्कृति, भारतीयता की अविच्छिन धारा, समूहगत पहचान की खोज, समाज में दायित्व की भावना आज यह सब बहुस्तरीय समाज के हितों के विरुद्ध माना जा रहा है। पर इस वैचारिक प्रक्रिया में देश की अस्मिता का क्या होगा और अब तक सारी दुनिया के चिंतक एवं विचारक हमें जिस सम्मान से देखते आए हैं लगता है, किसी को इसकी चिंता नहीं है। राष्ट्रप्रेम के आदर्शों से दूर क्या आज की खतरनाक विचारधारा हमारी युवा पीढ़ी को और अधिक दिशाहीन, हताश या नकारात्मक दृष्टि नहीं देगी?

भारत भविष्य की आशा

आज हमें मीडिया के एक वर्ग में बताया जा रहा है कि देश के अतीत में ऐसा कुछ विशेष नहीं है जिस पर हम गर्व कर सकते हैं। उनकी दृष्टि में हमारी विरासत है— पुरातनपंथी, मनुवादी जाति व्यवस्था पर आधारित खंडित समाज, मध्युगीन सामंतवाद और अंतर्विरोधों

से भरी सामाजिक दृष्टि! पर क्या हमें ज्ञात है कि पिछली पीढ़ी के विश्वविख्यात विदेशी विचारक और आज भी जो भारत को भविष्य की आशा मानते हैं हमें किस रूप में देखते आए हैं।

डॉ. लुई रेनू :सॉर्बान विश्वविद्यालय पेरिस में तीस वर्षों तक संस्कृत और भारतीय साहित्य पढ़ाने वाले आचार्य डा. लुई रेनू हिंदू धर्म और संस्कृत साहित्य पर चालीस से अधिक ग्रंथों के रचयिता थे। अमेरिका के येल विश्वविद्यालय में आमंत्रित आचार्य रहने के अलावा वे पश्चिम और पूर्व के कई शोध-संस्थानों के निदेशक भी रहे थे। अमेरिकी प्राच्य विद्या संस्थान भी उनके हिंदू धर्म पर दशकों के शोधकार्य के लिए ऋणी मानता है।

''हिंदूधर्म के लिए दर्शन एक बौद्धिक व्यायाम न होकर एक आध्यात्मिक अनुभूति है। वह सोचने के लिए उतना नहीं जितना पहचानने के लिए आमंत्रित करता है। उसमें दार्शनिक दृष्टि और संसार में जो संबंध है वह एक प्रकार के सम्मोहन का संबंध है। हिंदू धर्म दीक्षागम्य धर्म नही है। उसमें अनेक मार्ग और अनेक पद्धतियाँ हैं जिनमें से किसी को भी अपनाने की स्वतंत्रता है। इसीलिए हिंदू धर्म के लिए सत्य एक अविभाज्य निधि है।'' -डॉ. लुई रेनू

'आज के महान धर्मग्रंथ' माला ने 'हिंदू धर्म का परिचय'-ग्रंथ डॉक्टर रेनू ने संकलित किया था। इसकी भूमिका में हिंदू धर्म के बारे में उन्होंने जो लिखा वह इतना प्रासंगिक है कि हर भारतीय को उसके बारे में जानना अपेक्षित है।

वे कहते हैं- ''हिंदूधर्म के लिए दर्शन एक बौद्धिक व्यायाम न होकर एक आध्यात्मिक अनुभूति है। वह सोचने के लिए उतना नहीं जितना पहचानने के लिए आमंत्रित करता है। उसमें दार्शनिक दृष्टि और संसार में जो संबंध है वह एक प्रकार के सम्मोहन का संबंध है।''

डॉ. रेनू ने कहा कि हिंदू धर्म दीक्षागम्य धर्म नहीं है। उसमें अनेक मार्ग और अनेक पद्धतियाँ हैं जिनमें से किसी को भी अपनाने की स्वतंत्रता है। इसीलिए हिंदू धर्म के लिए सत्य एक अविभाज्य निधि है। रहस्य का मार्ग हर किसी के लिए खुला है और आध्यात्मिक तत्त्व सर्वत्र विद्यमान हैं अपने शुद्ध रूप में हिंदू धर्म ज्ञान का एक रूप हो जाता है, उसी ज्ञान का जिससे भारत आने वाले प्राचीन यूनानी प्रभावित हुए थे और जो हमारी आज की विदग्ध संस्कृतियों के लिए फिर मूल्यवान हो सकता है।

प्रो. ए. एल. बाशम इस सदी के सबसे बड़े भारतवेत्ता माने जाते थे। प्राचीन भारतीय इतिहास के विशेषज्ञ के अलावा उन्हें संस्कृत और हिंदी का अथाह ज्ञान था। पारंपरिक ईसाई धर्म से उनका मोह भंग हो चुका था और लंदन में स्कूल ऑफ ओरियंटल एंड अफ्रीकन स्टडीज के.सी.ए. रोलैन्ड्स से उनका संस्कृत से परिचय हुआ था। डॉ. एल.बी.बनीं जो एक स्विस नागरिक थे उन्होंने उनके शोधकार्य में दिशानिर्देश किया था और उन्हीं से हिंदी सीखी थी। वे कहते हैं कि वे औपचारिक रूप से हिंदू धर्म में दीक्षित नहीं हुए पर उनकी आत्मा हिंदू रही। उनका विश्वविख्यात ग्रंथ 'द वण्डर दैट वाज इंडिया' इस देश के प्राचीन इतिहास के प्रति अदम्य आदर प्रकट करता है। वे उन इतिहासकारों के विचारों के विरुद्ध थे जो मानकर चलते थे कि प्राचीन विश्व के हर हिस्से में सामान्य व्यक्ति विपन्न और दयनीय थे। उनके अनुसार प्राचीन भारत की स्थिति भिन्न थी। वे इस बात पर दृढ़ थे कि 15वीं शताब्दी के रूसी यात्री एलैक्जेंडर निकितिन के पहले के सारे वर्णनों में सामान्य भारतीय अत्यंत खुशहाल थे। भारतीय संस्कृति से वे मानसिक

रूप से जुड़े थे और उनके ग्रंथ आज भी हर भारतीय को प्रेरणा दे सकते हैं।

अपनी मृत्यु के पहले विश्वभारती विश्वविद्यालय के उपकुलपति डॉ. निमाई साधन बोस को दिए एक साक्षात्कार में उन्होंने कहा था ''प्राचीन भारतीय संस्कृति का स्तर दुनिया की किसी भी पुरातन सभ्यता से बेहतर था। शायद उस समय का भारत रहने के लिए बाकी प्राचीन विश्व से कहीं अधिक संपन्न और वैभवशाली था।''

अनेक विदेशी विचारकों ने सदैव माना है कि भारत की राष्ट्रीय पहचान की जड़ इसका धर्म है। भारतीय संस्कृति का ताना वही है जिसे आर्य या हिंदू धर्म कहा जाता है। बाने के सूत इधर-उधर से आये हैं, पर वे सब ताने पर आश्रित हैं। गंगा में बहुत सी छोटी-बड़ी नदियाँ मिली है परंतु मिलने पर जो पयस्विनी बनती है वह गंगा कही जाती है। प्रसिद्ध विचारक अबी डुबाय भारत को दुनिया का पालना कहते थे जहाँ से पश्चिम को भाषा, कानून, नीति, साहित्य और धर्म का उत्तराधिकर मिला है।

विदेश में रहने वाले भारतीय अपनी राष्ट्रीयता और विरासत पर गर्व करते हैं। इसके विपरीत भारत में रहने वालों में राष्ट्रभावना इतनी तीव्र नही हैं। यदि भारत में रहनेवाले भी अपने देश पर गर्व करने लगें तो यह देश तीसरे विश्व के स्तर से ऊपर उठकर दुनिया की बड़ी औद्योगिक शक्ति बन सकता है। भारतीयों को अपने देश पर उतना ही अभिमान करना चाहिए जितने सिंगापुरवासी या इज़रायली अथवा अमेरिकी करते हैं। -एडम ओस्बार्न

एडम ओस्बार्न : केलीफोर्निया में रहनेवाले एक प्रकाशक हैं जिनके पिता एक अँग्रेज थे और माँ पोलिश मूल की थी। उनका पालन-पोषण तमिलनाडु में श्री रमण महर्षि के आश्रम में हुआ था। हाल में उन्होंने लिखा कि विदेश में रहने वाले भारतीय अपनी राष्ट्रीयता और विरासत पर गर्व करते हैं। इसके विपरीत भारत में रहने वालों में राष्ट्रभावना इतनी तीव्र नही हैं। यदि भारत में रहनेवाले भी अपने देश पर गर्व करने लगें तो यह देश तीसरे विश्व के स्तर से ऊपर उठकर दुनिया की बड़ी औद्योगिक शक्ति बन सकता है। ओस्बार्न का कहना है कि भारतीयों को अपने देश पर उतना ही अभिमान करना चाहिए जितने सिंगापुरवासी या इज़रायली अथवा अमेरिकी करते हैं।

ऐसा क्यों है कि देश के एक वर्ग में राष्ट्र सम्मान की मात्रा अधिक है दूसरे में नहीं? ओस्बार्न स्वयं प्रश्न करते हैं कि शायद मातृभूमि से दूर रहने पर वे यहाँ की विशिष्टता का महत्त्व सही संदर्भ में समझ पाते हैं; या इसका कारण भारत का औपनिवेशिक भूतकाल है? क्या देश पर गर्व करना सीखने की चीज है? भारतीय विरासत में क्या तत्त्व हैं जिन पर हम सबको गर्व करना चाहिए? आज कुछ लोग नई जड़ों की खोज में अपनी पुरानी जड़ों को भूल जाना चाहते हैं और नकारात्मक मानसिकता व दुराग्रहों को बढ़ावा दे रहे हैं। गर्व करना व्यक्तिनिष्ठ भावना की बात है; व्यक्ति की शक्ति का मूल स्रोत है, क्योंकि वह गुण हममें लोप होता जा रहा है, आत्मसंशय के शिकार हैं और इसीलिए देश प्रेम सिखाना उतना सरल नहीं है।

ओस्बार्न यह भी कहते हैं कि सही अर्थों में यह देश अब भारत नहीं कहा जा सकता। वह भारत जिस पर मुगलों ने शासन किया और जिसे अँग्रेजों ने उपनिवेश बनाया वह पूरा का पूरा एक उपमहाद्वीप था। कश्मीर से कन्याकुमारी तक और अफगानिस्तान, असम और बर्मा की सीमा तक। सारी दुनिया इस देश को हिंदुस्तान कहती थी। उसी तरह जिस तरह

चीनियों का देश चीन है। यही इसकी दुनिया भर में पहचान थी। भारत-विज्ञान या इंडोलाजी ज्ञान की पृथक विद्या थी। एक समय मुगल साम्राज्यवादी शासन में वे स्वयं राजकीय दस्तावेजों और अभिलेखों में इसे हिन्दुस्तान कहते थे। सच तो यह है कि सोलहवीं शताब्दी के बाद से हिंदू शब्द लगातार एक भौगोलिक व्याख्या के रूप में रहा था। सिंधु नदी के पार रहने वाले सभी देशवासियों को हिंदू संज्ञा दी गई थी। पर अँग्रेज ने यह नाम छोड़ दिया और इसे इंडिया कहा -शायद बहुसंख्यकों को अपनी राष्ट्रीय पहचान भुलाने के उद्देश्य से। यह तो स्वतंत्रता संग्राम के दिनों के प्रारंभ में मुसलिम दबावों और

इंडोनेशियावासियों ने इस्लामी सभ्यता अपनाने के बाद भी हिंदू और बौद्ध विश्वासों व परंपराओं को जिस स्तर पर अपनाया है, वह आज भी बेमिसाल है। इंडोनेशिया में तो हिंदू-बौद्ध परंपरायें इतनी सशक्त रही है कि इस्लाम को उनसे समझौता करना पड़ा है। भौगोलिक अवरोधों के द्वारा अलग किए जाने के बावजूद किस तहर हिंदू धर्म खमेर जाति ने अपनाया था वह इतिहासकारों के अध्ययन का विषय रहा है। अपने ही देश में बृहतर भारत के बिछड़े सहधर्मियों के बारे में कोई बौद्धिक उत्सुकता नही दीखती है।

-आर्नाल्ड टायनबी

अँग्रेजों की जातीय विभाजन की नीतियों के कारण हिंदू शब्द पूर्णत: धर्मावलंबियों के पृथक अर्थ में प्रयुक्त किया गया। समय के साथ-साथ शब्दों के अर्थ तो अवश्य बदलते हैं पर राजनीतिक दुराग्रहों के कारण इस देश में इसे संकुचित रूप में प्रयुक्त कर अलगाव की भावना मीडिया के एक वर्ग द्वारा पैदा की गई है। ओस्बार्न के मत में हिंदू और हिंदुस्तानी सिर्फ ब्रिटिश शासन के बाद से गुजराती, तमिल, कन्नड़, तेलगु आदि पहले हो गये और शायद सिर्फ हिन्दुस्तानी बाद में। यह भारतीयता की भावना उन्हें सालती है जब वे सुदूर देशों में रहकर अपने देश की फिर नई पहचान वहाँ के जीवन-दर्शन की तुलना करते हुए करते हैं।

आर्नाल्ड टायनबी : विदेशों में भारत की पारंपरिक छवि को समझने के लिए विश्व-प्रसिद्ध विचारक आर्नाल्ड टायनबी के विचार जानना आवश्क है। 'द वर्ल्ड एंड द वेस्ट' में उन्होंने भारत की भूमिका के बारे में विस्तार से लिखा है।'' भारत अपने में एक समूचा विश्व है; वह एक महान गैर-पश्चिमी समाज है जिस पर उनके आक्रमण ही नहीं हुए और चोटें पहुँचाई गई, बल्कि इसको पूरी तरह पद्दलित और विजित किया गया। भारत की आत्मा के अंदर पश्चिमी विचारों का लोहा काफी गहराई तक बैठ गया है।'' उन्होंने यह भी कहा कि पश्चिमी हथियारों द्वारा भारत कभी विजित नहीं हो सकता यदि पहले लंबे समय तक यह मुसलिम आक्रांतओं द्वारा पद्दलित न किया गया होता।

ईसा की छठी और सातवीं शताब्दियों में जापान ने भारतीय बौद्ध मत को चीनी रूपांतर के साथ आत्मसात् किया। दक्षिण-पूर्व एशिया की मुख्य भूमि तथा इंडोनेशिया के निवासियों ने हिंदू और बौद्ध धर्म जिस तरह आत्मसात् किया वह समाजशास्त्रियों के लिए आश्चर्य का विषय है। टायनबी के अनुसार इंडोनेशियावासियों ने इस्लामी सभ्यता अपनाने के बाद भी हिंदू और बौद्ध विश्वासों व परंपराओं को जिस स्तर पर अपनाया है, वह आज भी बेमिसाल है। वे लिखते हैं कि इंडोनेशिया में तो हिंदू-बौद्ध परंपरायें इतनी सशक्त रही हैं कि इस्लाम को उनसे समझौता करना पड़ा है। भौगोलिक अवरोधों के द्वारा अलग किए जाने के बावजूद किस

तहर हिंदू धर्म खमेर जाति ने अपनाया था वह इतिहासकारों के अध्ययन का विषय रहा है। अपने ही देश में बृहतर भारत के बिछड़े सहधर्मियों के बारे में कोई बौद्धिक उत्सुकता नहीं दीखती है। जबकि वे हरदम कहते हैं कि उनके पूर्वजों का धर्म हिंदू था। बोरोबुदर, अंगकोरवाट और अंगकोरथोम के भव्य हिंदू-बौद्ध भग्नावशेषों और उनके वैभव के बारे में भी हमारे देशवासियों को पूरी तरह से ज्ञान नहीं है।

टॉयनबी ने एक विशेष बात कही है कि गैर-ईसाई देशों में विशेषकर भारत में एक से अधिक धर्मों का सह-अस्तित्व एक सामान्य घटना है। उन्होंने यह भी कहा कि ईसाई -पूर्व ग्रीको-रोमन जगत् में, हिंदुओं और पूर्वी एशिया में एक से अधिक धर्मों तथा दर्शनों का सहअस्तित्व एक स्वाभाविक बात रही है। जहाँ तक हिंदू और बौद्ध सभ्यताओं का प्रश्न हैं उनकी सहिष्णुता और समत्व दृष्टि पर टॉयनबी लगभग मंत्रमुग्ध से थे।

गैर-ईसाई देशों में विशेषकर भारत में एक से अधिक धर्मों का सह-अस्तित्व एक सामान्य घटना है। उन्होंने यह भी कहा कि ईसाई -पूर्व ग्रीको-रोमन जगत् में, हिंदुओं और पूर्वी एशिया में एक से अधिक धर्मों तथा दर्शनों का सहअस्तित्व एक स्वाभाविक बात रही है। जहाँ तक हिंदू और बौद्ध सभ्यताओं का प्रश्न हैं उनकी सहिष्णुता और समत्व दृष्टि देखते ही बनती है। – आर्नाल्ड टायनबी

आन्द्रे मारलो : जब प्रसिद्ध विचारक आन्द्रे मारलो को भारत में एक पुरस्कार से सम्मानित किया गया था, उन्होंने कहा था – भारत ज्ञान का देश है और इसको फिर यह परिभाषित करना होगा कि आज विश्व में शिक्षा की बदलती आवश्यकतायें क्या हैं। जहाँ एक विश्वस्तरीय विचारक भारत की ओर देखने की बात करता हैं वहीं खेद है कि हमारे बीच बुद्धिजीवियों का एक वर्ग राष्ट्रीयता की मूल अवधारणा पर भी संशय व्यक्त कर रहा है और अनास्था तथा राष्ट्रद्रोह को भी आधुनिक दृष्टि का बाना पहना रहा है।

अनेक विचारक मानते हैं कि आज हमारे देश की आध्यात्मिक और चारित्रिक बैटरी जो खासकर सामाजिक दायित्व और संवेदनशीलता से संबद्ध है, कमजोर हो चुकी हैं। महात्मा गांधी भी कहते थे कि महानता के सही गुणों के प्रदर्शन के लिए यह आवश्यक नही हैं कि आपके पास बड़े स्तर पर संसाधन हों। यह बात कुछ लोगों को अटपटी लग सकती है। पर क्या हमारी सुरुचि, उदारता, सुव्यवस्था और संतुलन में अपने चरित्र की गंभीरता और अनूठापन नही दिखाया जा सकता है।

विदेशियों की नजर में ऐसे कौन से तत्त्व हैं जो भारत को दुनिया के देशों से अलग रखते हैं। यदि हम गहराई से ध्यान दें तो इसकी अन्तर्निहित शक्तियों उदारदृष्टि एवं सक्षमता की जड़ें इसके अतीत से जुड़ी हैं। हजारों साल की विरासत सिर्फ वैचारिक ही नहीं बल्कि इसके विज्ञान, दर्शन एवं सक्षमता के कीर्तिमान भी हैं जिन पर पश्चिम के विचारकों की दृष्टि तो गई है पर उन्हें हम स्वयं याद कर गर्व नहीं करना चाहते।

विज्ञान और भारत

प्रसिद्ध वैज्ञानिक आईन्स्टाइन ने कहा था कि ''हमें भारतीयों का कृतज्ञ होना चाहिए कि उन्होंने हमें गिनती सिखाई जिसके बिना शायद कोई भी भावी वैज्ञानिक खोज संभव नहीं हो सकती थी।''बर्ट्रेन्ड रसल ने तो यहाँ तक लिखा कि अंकों को 'अरबी अंक' नाम पश्चिम ने भ्रमवश दिया, वे तो वस्तुत: 'हिंदू न्यूमेरल' कहे जाने चाहिए। यह विस्मय की

बात है कि अंकों का प्रयोग तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व के सम्राट अशोक के शिलालेखों में हुआ है। यह ज्ञान भारत से अरब देशों में गया फिर वहाँ से योरोप और पश्चिम के देशों में। अरबी में आज भी अंकों को 'हिन्दसे' कहा जाता है।

ला प्लेस : फ्रेंच गणितज्ञ और भौतिकशास्त्री ला प्लेस ने नैपोलियन के शासनकाल में लिखा था: ''यह भारत है जिसने हमें सारे अंकों को मात्र 10 चिह्नों में व्यक्त करना सिखाया'' ब्रह्मगुप्त प्राचीन विश्व का प्रथम गणितज्ञ था जिसने शून्य को अंक की तरह मानकर इसके गणित संबंधी कार्य किये। प्रसिद्ध विचारक लान्सेलाट होगबेन के अनुसार दुनिया के लिए शून्य की खोज से बड़ा क्रांतिकारी योगदान हो ही नहीं सकता है।

समय की गणना

जहाँ तक गणित ज्योतिष और खगोल विज्ञान का प्रश्न है ग्रहों की गति 499 ईस्वी में आर्यभट्ट द्वारा खोज ली गई थी। सन् 505 में लतादेव और सन् 628 में ब्रह्मगुप्त ने ग्रहण के समय की गणना में पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया था। वे वर्षों पहले किसी सूर्य ग्रहण या चंद्रग्रहण के समय की सही गणना कर सकते थे। यह ज्ञान योरोप में बाद की अनेक शताब्दियों तक उपलब्ध नहीं था। लतादेव के 'सूर्य सिद्धांत' में धरती की धुरी का ज्ञान था जिसे वे सुमेरु कहते थे। वाराहमिहिर ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि पृथ्वी गोल-स्फियर- है और अपनी धुरी पर परिक्रमा करती है। दूसरे भारतीय खगोलशास्त्री भी कॉपरनिकस से बहुत पहले इस तथ्य से परिचित थे।

ईसा की पाँचवी शताब्दी में भास्कराचार्य ने पृथ्वी द्वारा सूर्य की परिक्रमा के सही समय की गणना की थी। पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा में 365.258756484 दिन लेती है, यह योरोपीय खगोलशास्त्रियों से सैकड़ों साल पहले भास्कराचार्य ने लिखा था। जहाँ तक समय के मापदंडों और विभाजन की खोज का प्रश्न है दिन, मास और वर्षों का नामकरण और पंचाग बनाने की विद्या भारत में ही सबसे पहले आयी। 505ईस्वी में लतादेव ने अपने सूर्य सिद्धांत ग्रंथ में वर्ष को 12 महीनों में विभाजित किया था।

त्रिकोणमिति

हड़प्पा और मोहनजोदड़ो की नागरी सभ्यता में उत्खनन से प्राप्त ईंटों के आकार से सिद्ध होता है कि ईसा पूर्व 2500 में प्राचीन भारत के लोगों को ज्यामिति का पूर्ण ज्ञान था। सबसे पहले आर्यभट्ट ने त्रिकोण का क्षेत्रफल ज्ञात करने के नियम बनाये थे जिससे त्रिकोणमिति का प्रारंभ हुआ।

पृथ्वी द्वारा सूर्य की परिक्रमा

ईसा की पाँचवी शताब्दी में भास्कराचार्य ने पृथ्वी द्वारा सूर्य की परिक्रमा के सही समय की गणना की थी। पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा में 365.258756484 दिन लेती है यह योरोपीय खगोलशास्त्रियों से सैकड़ों साल पहले भास्कराचार्य ने लिखा था। जहाँ तक समय के मापदंडों और विभाजन की खोज का प्रश्न है दिन, मास और वर्षों का नामकरण और पंचाग बनाने की विद्या भारत में ही सबसे पहले विकसित हुई। 505ईस्वी में लतादेव ने अपने सूर्य सिद्धांत ग्रंथ में वर्ष को 12 महीनों में विभाजित किया था। सौर मंडल का पृथ्वी के वातावरण पर प्रभाव और सप्ताह के सात दिनों का नामकरण पहले भारत में ही हुआ था जो सारी दुनिया में स्वीकृत हुआ। जूलियन और ग्रेगरी केलेंडर तो तुलनात्मक रूप से बहुत बाद की व्यवस्थायें हैं और

आज का पोप ग्रेगरी का बनाया केलेंडर तो इंग्लैंड में मात्र पिछले तीन सौ साल पहले ही लागू हो पाया था।

गुरुत्वाकर्षण व अंक विज्ञान

भास्कराचार्य अपने 'सिद्धांत शिरोमणि' ग्रंथ में गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत पर न्यूटन से शताब्दियों पहले चर्चा कर चुके थे। अंकों के विज्ञान में आंगुलिक-डिजिटल-पद्धति भी भारतीयों की खोज है। बौद्ध भिक्षुओं द्वारा यह ज्ञान चीन गया था। अरबों ने भी इसे अपनाया और वहाँ से यह ज्ञान योरोप गया। जर्मन लेखक थामस आर्य के अनुसार सिंधु सभ्यता में जो बॉट या वजन प्रयुक्त होते थे उनकी नाप दशमलव पद्धति पर थी और वे एक द्विआधारी -बाइनरी-पद्धति पर आधारित थे। पियरे लाप्लेस ने तो यहाँ तक कहा कि हमें भारतीयों का आभारी होना चाहिए कि दशमलव पद्धति हिंदुओं द्वारा आविष्कृत की गई है।

कर्नाटक के कोल्लूर में आदि शंकराचार्य जी द्वारा स्थापित, लगभग 2300 वर्ष प्राचीन मूकाम्बिकादेवी मंदिर में स्थापित लौह स्तम्भ।

धातु विज्ञान

जहाँ तक लोहा बनाने और ढ़ालने का प्रश्न है वह भारत में 3000 ईसा पूर्व ही खोज निकाला गया था। दिल्ली में मेहरौली का लौह स्तंभ, धार का लौह स्तंभ और कर्नाटक के कोल्लूर में स्थित मूकाम्बिका देवी मंदिर में स्थापित लौह स्तंभ इस बात के साक्ष्य हैं कि भारत में धातु-शिल्प एवं धातु विज्ञान काफी विकसित था। लगभग 2500 ई. पू. सिंधू घाटी की सभ्यता में तांबे और जस्ते के उपकरण मिले हैं। 'रसरत्नाकर' नामक प्राचीन ग्रंथ के अनुसार राजस्थान के जवार नामक स्थान पर जस्ते का काम होता था।

रसायन शास्त्र भी प्राचीन भारत में काफी विकसित था। 'रसविद्या' या कीमियागीरी ईसा की पाँचवी शताब्दी में काफी फलफूल रही थी। तांबे का तूतिया, लोहे और सीसे के कार्बोनेट बनाना भारतीयों ने सबसे पहले सीखा था।

मध्य प्रदेश के धार से तीन खंडों में प्राप्त लौह स्तम्भ।

आयुर्वेद

मानवजाति का प्राचीन चिकित्सा व दवाओं का सर्वाधिक पुराना ज्ञान आयुर्वेद है। औषधियों के जनक चार्वाक ने आयुर्वेद के विभिन्न पक्षों का संकलन 2500 वर्ष पहले किया था। यह इतना विकसित ज्ञान था कि चिकित्सा और रोगों की परिभाषाओं का कोश निघण्टु के रूप में संकलित किया गया था। आज जड़ी-बूटियों की वनस्पति की 45000 प्रजातियाँ ज्ञात हैं जिनमें से 16000 का वर्णन आयुर्वेद में आया है। सदियों से इस देश में उनका प्रयोग होता रहा है। पर आश्चर्य की बात है कि इन 'हर्बल' औषधियों का 45प्रतिशत पेटेंट अधिकार चीनियों के पास है, 20 प्रतिशत जापानियों के पास और केवल मुट्ठी भर स्वत्वाधिकार भारतीयों के पास है।

हड़प्पा के उत्खनन में प्राप्त अत्याधिक विकसित जल निकास प्रणाली।

शल्य चिकित्सा

आधुनिक रूपंकर-प्लास्टिक-शल्यचिकित्सा का जन्म भी भारत में हुआ था। ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में सुश्रुतने पहली प्लास्टिक शल्यचिकित्सा की थी। वैदिकयुग में प्रकृति की ओर पूर्ण ध्यान देने के कारण दुनिया का सबसे पहला वनस्पति या पेड़ पौधों का विस्तृत वर्गीकरण प्राचीन संस्कृत साहित्य में मिलता है।

स्थापत्य

दुनिया का पहला यंत्रीकृत नगर हड़प्पा और मोहनजोदड़ों के उत्खनन से मिला है। उस समय भी वास्तु और भवन निर्माण कला और नगर संयोजन की विकसित तकनीक थी। आश्चर्य है कि ईसा के 2500 वर्ष पूर्व भी उन नगरों में दो स्टेडियम थे और जल निकास प्रणाली भी थी। हड़प्पा सभ्यता के ही लोथल से प्राप्त तराजू और बाट इस बात के प्रमाण हैं कि यह सभ्यता व्यवसाय की दृष्टि से भी इतनी विकसित थी।

भाषा विज्ञान

प्राचीनतम लिखे शब्दों का साक्ष्य जो हड़प्पा में प्राप्त हुआ है वह 5500 वर्ष पुराना वैदिक लेखन है। दुनिया की पहली विकसित भाषा और इंडो-योरोपीय भाषाओं की जन्मदात्री संस्कृत है। आर्य परिवार की भाषाओं का स्रोत होने से शायद भाषाशास्त्री ही खुले आम आज कह पायेंगे कि योरोप की आधुनिक भाषाओं और हमारी हिंदी का स्रोत एक ही है। संस्कृत की वर्तनी-आर्थोग्राफी-पूर्णरूपेण वैज्ञानिक और ध्वन्यात्मक-फेनेटिक - है इससे अधिक सुव्यवस्थित लेखानुकूल उच्चारण किसी अन्य ध्वन्यात्मक वर्णमाला में उपलब्ध नहीं है। इसकी वर्णमाला में 63 ध्वनियाँ और वर्ण हैं। रूसी वर्णमाला

में मात्र 35 वर्ण हैं, स्पेनिश में 35, फारसी में 31, अँग्रेजी में 26 तथा लैटिन और हिब्रु में केवल बीस-बीस वर्ण है। 'फोर्ब्स' पत्रिका के अनुसार संगणकों के लिए सर्वाधिक उपयुक्त विश्वभाषा संसकृत ही है। पिछली पीढ़ी के अमर भारतवेत्ता मोनियर विलियंस ने लिखा था: ''सच तो यह है कि संस्कृत लिपि जितनी अच्छी है उतनी अच्छी और कोई लिपि नहीं। मेरा तो यह मत है कि संस्कृत लिपि मनुष्यों की उत्पन्न की हुई नहीं, देवताओं की उत्पन्न की हुई है।''

विश्वविद्यालय

विश्व का सबसे पहला विश्वविद्यालय 700 ईस्वी पूर्व तक्षशिला में स्थापित किया गया था। यहाँ 10,500 से अधिक विद्यार्थी दुनिया के विभिन्न कोनों से आकर 60 से अधिक विषयों का अध्ययन करते थे। ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में नालंदा विश्वविद्यालय अपने शिखर पर था और शिक्षा के क्षेत्र में बड़ा योगदान करता था। चीनी विद्वान ह्वेन साँग भी यहाँ अध्ययन करने आया था। नौकायान या समुद्र यात्रा की कला में भारतीय पारंगत थे उनकी साहसिक यात्राओं की गौरव गाथायें दक्षिण पूर्वी एशिया के सुदूर द्वीपों के अलावा दूर के महाद्वीपों के ध्वसावशेषों में उपलब्ध हैं। हिंदूकुश से मेक्सिको तक उन्होंने अपनी छाप छोड़ी है। नेवीगेशन भी संस्कृत के 'नौ' (नाव) और गति या चाल शब्दों से बना है। प्राचीन भारतीय विचारधारा में जोखिम के संरक्षण या बीमे की अवधारणा के बीज स्पष्ट है। ऋग्वेद में 'योगक्षेम' शब्द व्यवसाय के जोखिम के रूप में आया है। मनु, याज्ञवल्कय और कई प्राचीन संहिताओं में एक स्थान

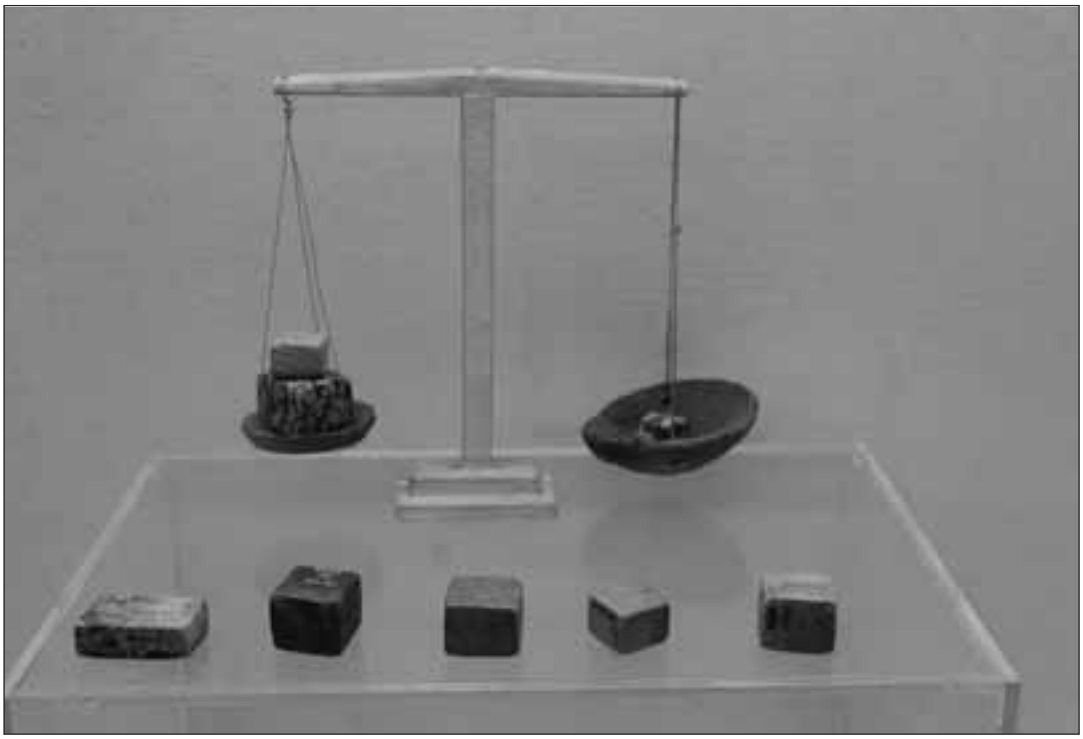

हड़प्पा सभ्यता (सिंधु घाटी) उत्खनन से प्राप्त तराजू और बाट।

से दूसरे स्थान पर ले जाने वाले सामान पर सुरक्षा शुल्क की बात उठाई गई। कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र' तो जोखिम की भरपाई करने के अनेक नियम बना चुका था।

गणतंत्र

शासन के चुनावों पर आधारित प्रजातांत्रिक ढाँचे की नीवँ भी सबसे पहले भारत में पड़ी थी। ऋग्वेद में कहा गया है –''गणतंत्र तुम्हें सम्राट की तरह चुनता है। यह राजत्व तुम्हारे दुराचरण से छिन सकता है।'' अथर्ववेद में लिखा है –सभी एक उद्देश्य और मस्तिष्क से एक सहमति वाले नेतृत्व में भाईचारे के साथ आगे बढ़ें।

शासन के चुनावों पर आधारित प्रजातांत्रिक ढाँचे की नीवँ भी सबसे पहले भारत में पड़ी थी। ऋग्वेद में कहा गया है -''गणतंत्र तुम्हे सम्राट की तरह चुनता है। यह राजत्व तुम्हारे दुराचरण से छिन सकता है।'' अथर्ववेद में लिखा है -सभी एक उद्देश्य और मस्तिष्क से एक सहमति वाले नेतृत्व में भाईचारे के साथ आगे बढ़ें।

प्रसिद्ध विचारक मास्टरलिंक के अनुसार इस बात पर वाद-विवाद करना असंभव है कि भारत में ही समस्त ज्ञान की जड़ें विद्यमान हैं। प्रसिद्ध अमेरिकी लेखक मार्क ट्वेन के अनुसार ''भारत मानवजाति का पालना है, इतिहास की माँ है, दंत कथाओं की दादी है और परंपराओं की पुरातन जननी है।'' मानव इतिहास के अत्यंत रहस्मय, रोमांचक एवं प्रेरक प्रसंग भारत से ही उद्भूत हुए हैं।

विल डूरां ने अपने ग्रंथ 'सभ्यता की गाथा' में लिखा है कि भारत हमारी जाति की मातृभूमि है और समस्त योरोपीय भाषाओं की माँ भी संस्कृत ही है। वह हमारे दर्शनशास्त्र और गणित की जननी है और ईसाई धर्म में अन्तर्निहित आदर्शों की भी सर्जक है। साथ ही हमारे प्रजातंत्र की भी वह माँ है। अनेक अर्थों में हम सबकी माँ है।'' प्रसिद्ध जर्मन विद्वान डॉ. मैक्समूलर ने अपने ग्रंथ 'सैक्रेड बुक्स ऑफ द ईस्ट' में लिखा है : 'यदि हमें सारे विश्व की ओर देखकर यह पता लगाना है कि वह कौन-सा देश है जिसे प्रकृति सारी सम्पत्ति, समस्त शक्ति और सौंदर्य प्रदान कर सकती है और जो धरती पर स्वर्ग हो सकता है – तब मैं भारत की ओर इशारा करूंगा'' उन्होंने यह भी लिखा है कि विश्व में उपनिषदों से अधिक '' रोमांचित, पुलकित करनेवाला और प्रेरक'' ग्रंथ है ही नहीं।

एक दूसरे विचारक विलियम जेम्स ने लिखा है प्राचीन वेद व्यावहारिक कलाओं, चिकित्सा, संगीत, वास्तुकला आदि जीवन के हर पक्ष के अलावा संस्कृति, धर्म, नीतिशास्त्र, विधि, मौसम विज्ञान, ब्रह्मांड विज्ञान आदि अनेक विषयों का विश्वकोश है। सर जॉन उडरफ ने भी लिखा है कि ''भारतीय वैदिक सिद्धांतों की परीक्षा यह सिद्ध करती है कि उसके विषय पश्चिम के अत्याधुनिक वैज्ञानिक और दार्शनिक विचारों से तालमेल खाते हैं।'' व्हीलर विलकाक्स लिखते हैं : ''भारत जो वेदों की भूमि है, जिसमें केवल संपूर्ण जीवन के लिए धार्मिक विचार ही नहीं बल्कि ऐसे तथ्य भी है जिन्हें विज्ञान सत्यापित कर चुका है।''

एमेलिन प्लूनरेट नामक लेखिका ने अपने ग्रंथ 'कैलेंडर्स एंड कांसटेलेशन' में लिखा है कि 6000 ईसा पूर्व हिंदू खगोलशास्त्री इतने आगे बढ़ गये थे जिस पर विश्वास नहीं होता है। पृथ्वी, सूर्य, चंद्र, ग्रहों और आकाशगंगा के आयामों की बात विस्तार से करने के अलावा सृष्टिशास्त्र संबंधी ज्ञान भी वैज्ञानिक दृष्टि से भरा है।

एलोबेरा की गुफाओं में बना कैलाश मंदिर

जर्मन दार्शनिक शापेनहावर ने लिखा है कि इस दुनियाँ में वेदों जैसा कोई ग्रंथ नहीं है जो आत्ममंथन और उदात्त भावनाओं को तीव्रता दे सके। इसीलिए शायद महान लेखक विल डूरां बार-बार लिखते हैं कि भारत हमें आज भी सहिष्णुता और परिपक्व मस्तिष्क की सौम्यता, आत्मिक ज्ञान और मानवमात्र के प्रति प्यार सिखा सकता है। भगिनी निवेदिता जो पहले मर्गारेट एलिजाबेथ नोबुल थी और सन् 1867 में जन्मी थी पूरी तरह भारतमय हो चुकी थी। स्वामी विवेकानंद के सान्निध्य के बाद भारतीय इतिहास के भावूपर्ण और रोमांचक पक्ष वे दुनिया के सामने लाई जिससे ब्रिटिश सरकार और मीडिया भी उनसे रुष्ट था। उन्होंने लिखा कि 590 ईसा पूर्व में समृद्ध और विकसित राजगिर की तुलना प्राचीन बेबीलन से की जा सकती है और लगभग उसी समय के इर्द-गिर्द बने और अजन्ता एलौरा के चैत्यों के मित्तिचित्रों की गुणवत्ता दुनिया में अनूठी है। उन 26 विशाल गुफाओं के निर्माता एक अत्यंत कर्मठ, समर्पित, बुद्धिमान और संवेदनशील समूह के अतिमानव ही हो सकते हैं।

जहाँ पश्चिम के अनेक विचारक भारत के प्रति आशावादी रहे हैं हमारे ही आज के प्रबुद्ध वर्ग में कुछ लोग पहचान की शंका और दोराहे पर खड़े होकर नई पीढ़ी में राष्ट्र के प्रति संशय के बीज बो रहे हैं। अपने देश की सभ्यता और संस्कृति की महानता को सत्यापित करने के लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं पर आज के कुछ प्रगतिशील इतिहासकारों की अपनी अलग व्याख्याओं द्वारा देश की अस्मिता पर गर्व करना तो दूर भव्य अतीत या प्राचीन गौरव की बात करने पर भी अपराधबोध कराया जा सकता है। पुरोगामी समाज और ऐतिहासिक दृष्टि के तथाकथित संरक्षक आश्चर्य नहीं पारंपरिक दृष्टिकोण को अंधराष्ट्रवादी उन्माद की संज्ञा दें।

फिर भी हम युवा पीढ़ी को इंगित कर वही कहेंगे जो आर्नाल्ड टॉयनबी ने कहा था—आज यह स्पष्ट हो गया है कि वह अध्याय जिसका प्रारंभ पश्चिम से हुआ उसका समापन भारत से फिर होगा। मानव इतिहास के इस भयावह क्षण में मानवता के उद्धार का सिर्फ भारतीय मार्ग ही बचा है।

लेखक वरिष्ठ पत्रकार व स्तंभ लेखक हैं।

आद्य संविधान की मूल प्रति में भगवान् श्री राम का चित्रांकन

राष्ट्र का राष्ट्रत्व भी विचारणीय है। इसके दो स्तर हैं – बाह्य और आंतरिक। राष्ट्र का आंतरिक स्वरूप सुरक्षित हो तो स्वरूप सचेत एवं सचेष्ट साधनों से सुरक्षित किया जा सकता। राष्ट्र के बाह्य स्वरूप में भौगोलिक सीमाएँ, कानून एवं शासन व्यवस्था, न्याय प्रणाली अर्थनीति, उद्योग, कृषि व इतरेतर देशों से संबंध नीतियाँ व प्रशासनिक कार्य आदि आते हैं। राष्ट्र के आंतरिक स्वरूप में संस्कृति, कालचिंतन, सृष्टि-बोध, ज्ञान-विज्ञान, मन-बुद्धि, शब्द-भाषा-लय-ताल, तर्क धारणा, जीवन-प्रद्धति, परिवार-संगठन, नारी के प्रति व्यवहार, इतिहास, पौराणिकता, दर्शन भाव-विचार, आस्था-विश्वास, शिक्षा-दृष्टि, साहित्य, संगीत, नृत्य, कला, आचरण, नैतिकता, समत्वभाव और स्मृति बोध आता है। यह राष्ट्र का सूक्ष्म शरीर है। बाह्य और आंतरिक पक्षों में कुछ तत्त्व कई स्थलों पर पूरक भावस्थ हो जाते हैं। राष्ट्र के बाह्य अस्तित्व के लुप्त अथवा आक्रमणकारियों द्वारा संकटग्रस्त कर देने पर भी राष्ट्रत्व, मन-बुद्धि, प्राण और स्मृतिबोध में यथास्थिति सुरक्षित रहता है। इन सभी तत्त्वों में भौगोलिक सीमाएँ, इतिहास और स्मृतिबोध महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

डॉ. नंदलाल मेहता 'वागीश'

राष्ट्रीय चेतना का स्वरूप

विषय - प्रयोजन की दृष्टि से सबसे पहले देश, राज्य और राष्ट्र की अवधारणा विचारणीय है। देश शब्द दिक्/दिश् धातु से बना है। दिश् से निर्मित दिशा शब्द विशिष्ट भौगोलिक इंगिता का वाचक है। देश शब्द निश्चित भौगोलिक क्षेत्र (स्थानकता) को व्यक्त करता है। इस प्रकार यह शब्द भूभागीय स्थिति का बोधक है। दिग्बद्ध भूभाग की अनिवार्यता 'देश' शब्द को चरितार्थ करती है। ऐसा भूभाग जो निश्चित दिशाओं से घिरा है, जिसमें रहने वाले लोग अनेक पीढ़ियों से समरस होकर रहते आए हैं और जिसका संचलन लोकबद्ध अथवा निश्चित व्यवस्थाओं से होता है, देश कहलाता है।

देश की राजनीतिक/शासनिक संज्ञा राज्य कहलाती है। तंत्र भिन्न हो सकता है किंतु निश्चित संचालन-व्यवस्था का होना आवश्यक है। शासन-प्रशासन, पुलिस नीति-नियम, शिक्षा, सुरक्षा, दंड-पुरस्कार आदि वैधानिक प्रेरकताएँ राज्य के सर्वजन हेतु लागू होती हैं।

भौगोलिक भू-भाग यानी उस क्षेत्र में रहने वाला लोक-समुदाय जब अपनी जीवन-पद्धति, आस्था, विश्वास, परंपरा, संस्कृति, सभ्यता, पौराणिकता, धर्म-चिंतन, दर्शन, कला-साहित्य की सर्जनात्मकता, नैतिक-सामाजिक -दृष्टि, सौंदर्य-बोध और भाषिक चैतन्य स्मृतियों के साथ प्रवहशील ऐतिहासिक गर्वबोध से जुड़ता है तो देश अपने काल-सातत्य के साथ 'राष्ट्र' की संज्ञा प्राप्त करता है।

'देश' शब्द के साथ-साथ 'राष्ट्र' शब्द के व्युत्पत्तिलब्ध अर्थ और प्रयोग

स्थिति को जान लेना भी आवश्यक है। 'राष्ट्र' शब्द राज् धातु से निर्मित है। राज् धातु प्रमुख रूप से चमकने, जगमगाने और सुंदर प्रतीत होने के अर्थ में प्रयुक्त होती है। यहाँ उल्लेखनीय यह भी है कि राज्य शब्द भी मूलत: राज् धातु पर आधारित है। स्पष्ट है कि राज-राज्य के पास प्रभुत्व, वर्चस्व आधिकरिता, बलप्रभाव और तेजस्विता होनी आवश्यक है, तभी उसकी सार्वभौमिकता सुरक्षित रह सकती है। कार्यशक्ति के दृष्टि से राज्य शब्द देश और राज्य दोनों संस्थितियों में फलित होता है। आधारभूत अंतर यह है कि देश की राजनीतिक संस्थिति है तो देश और राज्य की समग्र सांस्कृतिक भूति-सत्ता का नाम है राष्ट्र।

आद्य संविधान के प्रथम मौलिक संस्करण में भगवान् श्रीराम और कृष्ण सहित देश के अनेक आस्थेय पुरुषों-महापुरुषों के सजित चित्रों के माध्यम से भारत की इतिहास-सिद्ध अंतस्थ राष्ट्रीयता को इंगित करने का स्तुत्य प्रयास किया गया था और यह उचित भी था किंतु संविधान के बाद के संस्करणों से यह चित्र हटा लिए गए। आखिर ऐसा क्यों किया गया? क्या वे चित्र भारत राष्ट्र की आंतरिकता के अभिव्यंजक नहीं थे?

अवधेय यह है कि देश शब्द की तरह राष्ट्र शब्द का प्रयोग भी संस्कृत साहित्य में अनेक स्थलों पर हुआ है। विश्व के प्रथम काव्यग्रंथ 'वाल्मीकि रामायण' के विभिन्न सर्गों में 'राष्ट्र' शब्द प्रयुक्त हुआ है। ध्यातव्य यह है कि वहाँ प्रयुक्त राष्ट्र शब्द में देश, राज्य और राष्ट्र-भाव—ये तीनों स्तर समाहित हैं।

राष्ट्र

देश और राष्ट्र के निर्वचनगत अर्थ के उपरांत भी इन शब्दों की व्यावहारिक परिणति पर चर्चा अपेक्षित है। संविधान में राष्ट्र शब्द में 'नेशन' शब्द प्रयुक्त हुआ है, परंतु उससे बना 'नेशनल' शब्द 'राष्ट्रजन' शब्द का सर्वांग प्रतिनिधित्व नहीं करता। वहीं नेशनल से अभिप्राय नागरिक से है। यानि देश में रहनेवाले जन/नागरिक। देश के लिए 'कंट्री' - शब्द गरिमा-संगत नहीं है। बातचीत के सार्थक प्रवाह में भी देश के लिए नेशन शब्द का प्रयोग होता आया है। एवंगते, संस्कृत भाषा के 'राष्ट्र' शब्द के अर्थ-शोभन की समग्रता के लिए तो नेशन शब्द कदापि पर्याप्त नहीं है। राष्ट्र में रहने वाले जन का अपनी देश-भूमि और संस्कृति-इतिहास के साथ क्या और कैसा संबंध होना चाहिए? इस पर संविधान स्पष्टरूपेण मुखर नहीं है।

मौलिक अधिकारों के कानूनी प्रावधानों से न तो हजारों वर्ष पुराने भारत-भाव को समझा जा सकता है और न ही राष्ट्र के प्रति भारतीय मन की ऐतिहासिक कृतज्ञता के साथ न्याय किया जा सकता है। निश्चित रूप से आद्य संविधान के प्रथम मौलिक संस्करण में भगवान् श्रीराम और कृष्ण सहित देश के अनेक आस्थेय पुरुषों-महापुरुषों के सजित चित्रों के माध्यम से भारत की इतिहास-सिद्ध अंतस्थ राष्ट्रीयता को इंगित करने का स्तुत्य प्रयास किया गया था और यह उचित भी था किंतु संविधान के बाद के संस्करणों से यह चित्र हटा लिए गए। आखिर ऐसा क्यों किया गया? क्या वे चित्र भारत राष्ट्र की आंतरिकता के अभिव्यंजक नहीं थे?

राष्ट्र के प्रति कृतज्ञता

राष्ट्र के प्रति कृतज्ञ होना प्रत्येक राष्ट्रजन का कर्तव्य है। कृतज्ञता व्यक्तिगत, सामाजिक, राष्ट्रीय

और ईश्वरीय गुण है। भूमि के प्रति कृतज्ञता के माध्यम से हम पंचभूत-महागुणों के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हैं। इसलिए 'विष्णु सहस्त्रनाम' ग्रंथ के श्लोक- 70 में प्रयुक्त 'कृतज्ञ' भगवान् विष्णु का पर्याय है। इसी अर्थ में यह शब्द ईश्वरीय गुणता को प्राप्त हो चुका है। सभी प्राणि-शरीर भूमि पर रहते हैं किंतु कृतज्ञता भाव को व्यक्त करने का विशेष गुण केवल मनुष्य को मिला है। भूमि संबंध से उपलब्ध जल हमारी तृप्ति का कारक है सभी जल-स्रोतों का मूल यही धरती है। हमारे जीवन के सभी साधन और शोभन के सभी पदार्थ, हमें इसी धरती से मिलते हैं। इसलिए तो यह वसुंधरा है। अग्नि समस्त ऊर्जा की स्रोत है। अग्नि धरावासस्थ है। हमारा पाचनतंत्र भी अग्नि-प्रदीप्त है। वायु का संचार हमारे प्राणों का कारक है। यदि किंचित् काल के लिए वायु अवरुद्ध हो जाए तो हम तड़पने लगते हैं। आकाश के महाआँगन में सूर्य, चाँद, सितारे, बादल, वर्षा और समस्त ऋतुएँ अवतरित होती हैं। ध्वनि-अनुगूँज सहित शब्द आकाश का गुण है। इन सभी सौगातों के लिए पृथ्वी ही हमारे होने और हमारे जीवन के निमित्त और उपादान हेतु के रूप में है। इसलिए भारतीय चिंतन में कृतज्ञ भाव से मातृभूमि की वंदना की गई है। अहोभाव से मातृभूमि की जय बोलने में किसी का विरोध क्यों होना चाहिए? क्या ये सब सौगातें उसे पृथ्वी से नहीं मिलती? इसमें मजहब कैसे आड़े आता है? माँ तो सभी संतानों का भला चाहती है और करती भी है पर कुछ लोगों की दिक्कत यह है कि अपनी जन्मभूमि के प्रति नमन व्यक्त करने में वे संकोचग्रस्त हो जाते हैं फिर वे अपने मजहब की बात करने लगते हैं। इससे बड़ी कृतघ्नता क्या हो सकती है कि मुगलों और अँग्रेजी दरबार में सैकड़ों पग पहले से ही कोर्निश करते-करते जिनके पुरखों की कमर दोहरी हो जाती रही होगी, अब वे जन्मभूमि के प्रति सिर न झुकाने की दलीलें दे रहे हैं। जो जीते जी देश-भूमि के प्रति अपना सम्मान-प्यार व्यक्त नहीं करते, वे किस नैतिक आधार पर अपनी लाश को उसी भूमि में दफनाने की इच्छा व्यक्त करते हैं।

भारतीय चिंतन में कृतज्ञ भाव से मातृभूमि की वंदना की गई है। अहोभाव से मातृभूमि की जय बोलने में किसी का विरोध क्यों होना चाहिए? क्या ये सब सौगातें उसे पृथ्वी से नहीं मिलती? इसमें मजहब कैसे आड़े आता है? माँ तो सभी संतानों का भला चाहती है और करती भी है पर कुछ लोगों की दिक्कत यह है कि अपनी जन्मभूमि के प्रति नमन व्यक्त करने में वे संकोचग्रस्त हो जाते हैं फिर वे अपने मजहब की बात करने लगते हैं।

मातृभूमि पर बलिदान

हिंदी सहित सभी भाषाओं में मातृभूमि पर बलिदान देने वाले वीरों की गाथाओं से राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य संग्राम का पथ प्रशस्त हुआ था। मातृभूमि पर शीश चढ़ाने वालों की अर्चना करते हुए कभी माखन लाल चतुर्वेदी ने अपनी कविता 'पुष्प की अभिलाषा' में उन वीरों की श्रीचरणों की धूलि से स्वयं स्पर्शित होने की कामना से कहा था—

मुझे तोड़ लेना वन माली,
उस पथ पर देना तुम फेंक।
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने,
जिस पथ पर जावें वीर अनेक।

वस्तुत: वैदिक संस्कृत भाषा से लेकर समस्त भाषाओं में राष्ट्र-भक्ति-भावना की कामना की गई है। इसे ही ईश्वर भक्ति का मूल कहा गया है, जो

जन्मदात्री माँ जन्मभूमि को प्यार नहीं कर सकता, वह ईश्वर-भक्ति क्या करेगा? सन् 1962 में हमलावर चीनी सेना के लिए 'मुक्ति सेना' शब्द प्रयोग करने वाले गांधी जी को 'साम्राज्यवादियों का दलाल' और महान् क्रांतिकारी, नेताजी सुभाष चंद्र बोस को 'तोजो का कुत्ता' कहकर अपमानित करने वाले एवं महाकवि तुलसीदास के लिए 'सामन्तवाद का टटपूँजिया चापलूस' सरीखी दशाधिक अभद्र गालियों के प्रयोगकर्ता इन मार्क्सवादी बौद्धिक गुलामों को क्या कभी देशभक्त कहा जा सकता है? श्रीरामचरितमानस की चतुश्शती मानने का उन्होंने विरोध किया था। शासकीय स्तर पर संसद में उन्होंने यह सब कुछ जिहादीमना व्यक्तियों को संतुष्ट करने के लिए किया। उल्लेखनीय है कि सभी अन्य देशों के कम्यूनिस्ट अपने ही देश का समर्थन करते हैं। मात्र भारत में रहने वाले मार्क्सवादी गुलाम, राजनीतिक वक्तव्यों से लेकर अपने लेखन तक से इस राष्ट्र को अपमानित करने का सतत प्रयास करते रहे हैं।

इन मार्क्सवादी पिट्ठओं को बौद्धिक इसलिए कहा गया है कि ये स्वयं को बौद्धिक मानते हैं; वरना तो ये मानसिक गुलाम हैं। स्वतंत्रता के उपरांत जिन्होंने भारत को राष्ट्र मानने से इंकार कर दिया हो और भारत के प्रति अपनी हिंसक प्रवृत्ति को 'नक्सलवाद' के रूप में गढ़ा हो, उन्हें क्या राष्ट्रभक्त कहा जा सकता है? आजादी की लड़ाई में, अपवाद छोड़कर किसी भी मार्क्सवादी गुलाम ने हिस्सा नहीं लिया, अलबत्ता अँग्रेजों की मुखबिरी कर स्वाधीनता संग्राम को कमजोर करने में इन 'कामनिष्ठों' ने अपनी भूमिका जरूर निभाई है।

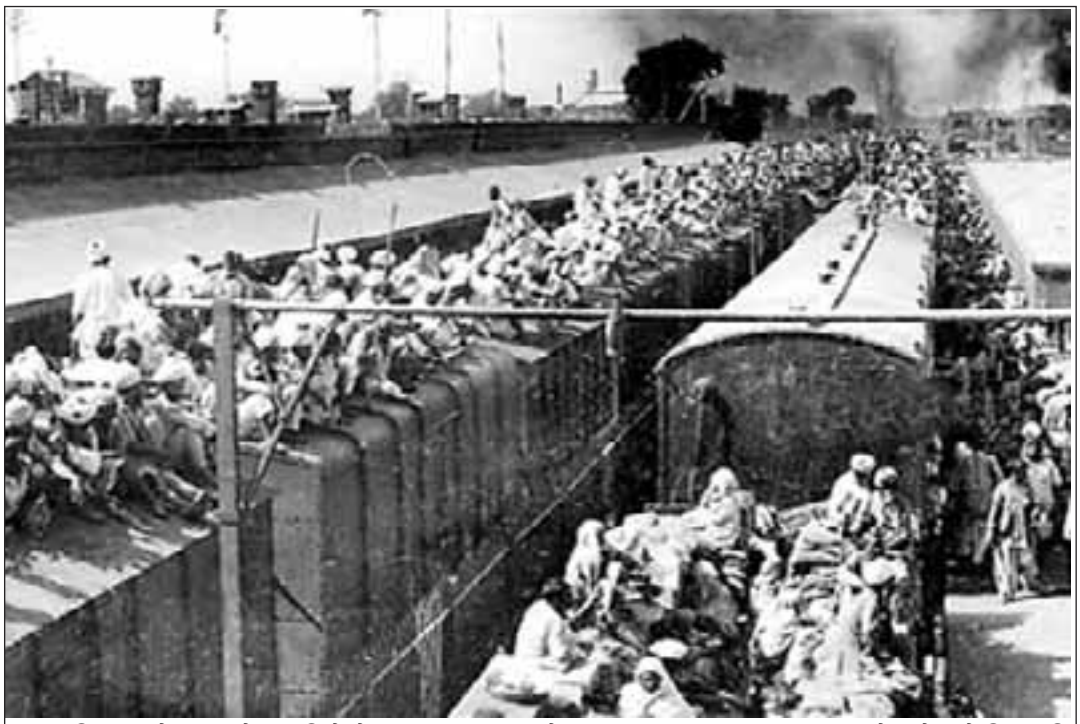

भारत विभाजन के समय रेल गाड़ियों में इस तरह भर कर लोग आए, उस समय लगभग एक करोड़ लोग तो विस्थापति हुए और 10 लाख से अधिक मारे गए।

भारत विभाजन का सच

इतिहास का यह सत्य सभी को ज्ञात है कि भारत विभाजन के जिम्मेदार मुस्लिमलीगी नेता मुहम्मदअली जिन्ना थे। उनका यह तर्क था कि मुस्लिम और हिंदू दो अलग-अलग राष्ट्र हैं। मुस्लिम और हिंदू एक साथ नहीं रह सकते। मुस्लिमों के लिए अलग राष्ट्र पाकिस्तान बनाया जाए। इसलिए 16 अगस्त 1946 में जिन्ना ने 'डायरेक्ट एक्शन' (सीधी कार्यवाही) को अंजाम दिया, परिणामस्वरूप अकेले कलकत्ता में हजारों हिंदुओं की नृशंस हत्याएँ हुई। इसके दो माह बाद भी पूर्वी बंगाल के नौआखली और टिपराह में हत्यारे मुस्लिमों ने हिंदुओं का सफाया कर दिया। गांधी जी को छोड़कर नेहरू जी सहित अन्य काँग्रेसी नेताओं ने भी भारत विभाजन को स्वीकृति दे दी। भारत में उस समय 10 करोड़ मुस्लिम आबादी में से एक तिहाई यानी कि 3.4 करोड़ मुस्लिम भारत में ही रह गए। इनमें से अधिसंख्य वे थे, जिन्होंने पाकिस्तान निर्माण की जिन्ना योजना का खुलकर समर्थन किया था। पंडित नेहरू और गांधी जी के प्रयासों से ऐसे मुस्लिम भी पाकिस्तान न जाकर भारत में ही सुरक्षित स्थिति में रह गए। वस्तुत: अँग्रेजों ने विभाजन के निर्णय को ईमानदारी से अंजाम ही नहीं दिया। फलस्वरूप विभाजन काल के दौरान भी आक्रामक मुसलमानों के हाथों हिंदू-सिक्खों का कत्लोगारत हुआ। संयुक्त पंजाब के प्रसिद्ध अखबार 'द ट्रिब्यून' ने उस समय 10 लाख हिंदू-सिक्खों के मारे जाने की खबर दी थी।

उपर्युक्त तथ्यों के आलोक में भारतधर्मी समाज के सभी वर्ग एक सवाल पूछते हैं कि पाकिस्तान जाने वाले क्या सभी मुसलमान पाकिस्तान प्रेमी थे और जो नहीं गए क्या वे भारत समर्थक थे? यदि ठीक ढ़ंग से विभाजन संपन्न होता तो परिणाम इतने भयानक नहीं होते।

भारत विभाजन के जिम्मेदार मुस्लिमलीगी नेता मुहम्मद अली जिन्ना थे। उनका यह तर्क था कि मुस्लिम और हिंदू दो अलग-अलग राष्ट्र हैं। मुस्लिम और हिंदू एक साथ नहीं रह सकते। मुस्लिमों के लिए अलग राष्ट्र पाकिस्तान बनाया जाए। इसलिए 16 अगस्त 1946 में जिन्ना ने 'डायरेक्ट एक्शन' (सीधी कार्यवाही) को अंजाम दिया, परिणामस्वरूप अकेले कलकत्ता में हजारों हिंदुओं की नृशंस हत्याएँ हुई।

हिंदू हैं भारतधर्मी समाज

इतिहास का सच्च यह भी है कि भारतधर्मी समाज, जो हिंदुओं के नाम से जाना जाता है, कभी भी आतंकवादी नहीं हो सकता। जीवन के विकारों के आप कितने ही दोष उन पर लगा दें, पर आतंकवादी होना उनके स्वभाव के विपरीत है। यहाँ तक कि हिंदू धर्म की रक्षा के लिए हथियार उठाने वाले और सर्वस्व बलिदान करने वाले संत-सिपाही स्वभाव के सिक्ख भी कभी आतंकवादी नहीं हो सकते। यही न्याय क्षात्र-वर्ग के मराठों, राजपूतों, जाटों, गुर्जरों, यादवों और समाज-रक्षा के लिए तत्पर अन्य हिंदू वर्गों पर लागू होता है। वर्तमान काल के पकिस्तानी मुस्लिम शासकों द्वारा अपनी प्रतिशोध नीति से 'खालिस्तान का स्वप्न' दिखाकर कुछ सिक्ख-बंधुओं को भले ही विपथगामी बना लिया हो, किंतु सिक्ख-समाज का अपने देश के रक्षक होने का ऐतिहासिक गौरव उन्हें मूलधर्मी हिंदू-समाज की विरासत से जोड़ता है। जब तक 'श्री गुरु ग्रंथ साहिब' कायम है, हिंदू-सिक्खों

का यह रिश्ता टूट नहीं सकता। वस्तुत: भारतधर्मी समाज के इतिहास –पुरुष, संस्कृति, परंपरा, कला और अध्यात्म के प्रेरणा–स्रोत एक हैं।

एक तो भारतधर्मी समाज के शील–संकोच, दूसरे राजनीतिक भाषा के छलपूर्ण जुम्लों और कपटपूर्ण वक्तव्यों की बारम्बारता से यह अक्सर सुनने को मिलता है कि आतंकवाद का कोई धर्म नहीं होता। क्या आतंकवाद कोई आकाशीय अथवा प्राकृतिक दुर्घटना है। जमीनी सच्चाई यह है कि आतंकवादियों के मुख से सुनकर ही यह स्पष्ट जाना जा सकता है कि आतंकवादी किस मजहब से ताल्लुक रखते हैं और किस भारत पर हमला करने वाले लुटेरे–हत्यारों के नाम से अपना रिश्ता जोड़कर गर्वित होते हैं। ऐसे में प्रश्न यह है कि यहाँ रहने वाले कुछ इस्लामी लोग इस देश पर हमला करने वाले मुस्लिम हमलावरों से स्वयं को अलग क्यों नहीं कर सकते? पर ऐसा न करके जो उन्हें अपना इतिहास–पुरुष मानते हैं, तो ऐसे ही मुसलमान देश का विरोध करते हैं। वे समरस नहीं होना चाहते। यदि वे अपने होने को बाहरी आक्रमणकारियों से जोड़ते हैं तो वे आतंकवादियों के कपटपूर्ण समर्थक हैं। कुछ समय पहले भारत के एक प्रसिद्ध चैनल पर पूछे जाने पर एक कथित विशेषज्ञ सगर्व कह रहा था कि मैं पहले मुसलमान हूँ, और बाद में कुछ और हूँ। जब पूछा गया कि आप भारतीय हैं या नहीं तो उसने गरज कर कहा कि संविधान में कहाँ लिखा है कि मैं भारतीय हूँ।

राष्ट्रीय चेतना का प्रमुख तत्त्व स्मृति-बोध विचारणीय है। स्मृति-बोध का संबंध यूँ तो सभी चेतना-तत्त्वों से है, पर इतिहास-तत्त्व का तो वह बीजांक है। सामान्य रूप से भारतधर्मी समाज का मन अपने इतिहास-नायकों और राष्ट्रपुरुषों के प्रति सम्मान भाव से भरा रहता है पर भारतेत्तर मजहब के कुछ लोग इस देश पर हमला करने वाले गौरी-गजनवियों, सुलतानों, तुगलकों, तैमूरलंगों और अब्दालियों सहित बाबर एवं सगे भाइयों के हत्यारे औरंगजेब जैसे मुगलों को अपना आदर्श मानते हैं।

राष्ट्र का राष्ट्रत्व

राष्ट्र का राष्ट्रत्व भी विचारणीय है। इसके दो स्तर हैं — बाह्य और आंतरिक। राष्ट्र का आंतरिक स्वरूप सुरक्षित हो तो स्वरूप सचेत एवं सचेष्ट साधनों से सुरक्षित किया जा सकता। राष्ट्र के बाह्य स्वरूप में भौगोलिक सीमाएँ, कानून एवं शासन व्यवस्था, न्याय प्रणाली अर्थनीति, उद्योग, कृषि व इतरेतर देशों से संबंध नीतियाँ व प्रशासनिक कार्य आदि आते हैं। राष्ट्र के आंतरिक स्वरूप में संस्कृति, कालचिंतन, सृष्टि–बोध, ज्ञान–विज्ञान, मन–बुद्धि, शब्द–भाषा–लय–ताल, तर्क धारणा, जीवन–प्रद्धति, परिवार–संगठन, नारी के प्रति व्यवहार, इतिहास, पौरणिकता, दर्शन भाव–विचार,आस्था–विश्वास, शिक्षा–दृष्टि, साहित्य, संगीत, नृत्य, कला, आचरण, नैतिकता, समत्वभाव और स्मृति बोध आता है। यह राष्ट्र का सूक्ष्म शरीर है। बाह्य और आंतरिक पक्षों में कुछ तत्त्व कई स्थलों पर पूरक भावस्थ हो जाते हैं। राष्ट्र के बाह्य अस्तित्व के लुप्त अथवा आक्रमणकारियों द्वारा संकटग्रस्त कर देने पर भी, राष्ट्रत्व, मन–बुद्धि, प्राण और स्मृतिबोध में यथास्थिति सुरक्षित रहता है। इन सभी तत्त्वों में भौगोलिक सीमाएँ, इतिहास और स्मृतिबोध महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

देश में वासस्थ जन-समुदाय की साझी ऐतिहासिक विरासत, परंपराएँ, आस्था, विश्वास, समय-स्थानगत अवश्यक परिवर्तनयुक्त जीवन-पद्धति, पारिवारिक-सामाजिक मूल्य, लोकलाजपरक व्यवहार-चिंतन, माँ, बहन और बेटी के प्रति आदरभाव की आध्यात्मिक संदृष्टि , धर्म, नैतिकता, पौराणिकता, सृष्टि-उद्भव-चिंतन, आधारभूत अधिष्ठान के साथ संस्कृत से निःसृत सभी उत्तर भारतीय एवं नाद-ध्वनन-लयसंयुत दाक्षिणात्य भाषाओं सहित अन्य वाग्रूपों की विषयगत वैचारिकता, भावगत सौंदर्य एवं शैली-सौष्ठव के प्रेरक स्रोत तथा सभी 'आकर ग्रंथ' राष्ट्रीय चेतना के स्वरूप को निर्धारित करते रहे हैं।

राष्ट्रीय चेतना

राष्ट्रीय चेतना का प्रमुख तत्त्व स्मृति-बोध विचारणीय है। स्मृति-बोध का संबंध यूँ तो सभी चेतना-तत्त्वों से है, पर इतिहास-तत्त्व का तो वह बीजांक है। सामान्य रूप से भारतधर्मी समाज का मन अपने इतिहास-नायकों और राष्ट्रपुरुषों के प्रति सम्मान भाव से भरा रहता है पर भारतेत्तर मजहब के कुछ लोग इस देश पर हमला करने वाले गौरी-गजनवियों, सुलतानों, तुगलकों, तैमूरलंगों और अब्दालियों सहित बाबर एवं सगे भाइयों के हत्यारे औरंगजेब जैसे मुगलों को अपना आदर्श मानते हैं। ऐसी सांप्रदायिक धारणाएँ राष्ट्रीय एकत्व को विखंडित करती हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि देश में वासस्थ जन-समुदाय की साझी ऐतिहासिक विरासत, परंपराएँ, आस्था, विश्वास, समय-स्थानगत अवश्यक परिवर्तनयुक्त जीवन-पद्धति, पारिवारिक-सामाजिक मूल्य, लोकलाजपरक व्यवहार-चिंतन, माँ, बहन और बेटी के प्रति आदरभाव की आध्यात्मिक संदृष्टि , धर्म, नैतिकता, पौराणिकता, सृष्टि-उद्भव-चिंतन, आधारभूत अधिष्ठान के साथ संस्कृत से निःसृत सभी उत्तर भारतीय एवं नाद-ध्वनन-लयसंयुत दाक्षिणात्य भाषाओं सहित अन्य वाग्रूपों की विषयगत वैचारिकता, भावगत सौंदर्य एवं शैली-सौष्ठव के प्रेरक स्रोत तथा सभी 'आकर ग्रंथ' राष्ट्रीय चेतना के स्वरूप को निर्धारित करते रहे हैं।

वस्तुतः राष्ट्र का राष्ट्रत्व देश का आत्मदर्शन है। अतः तात्त्विक रूप से देशभक्ति और राष्ट्रवादिता एक समान हैं। कम-से-कम भारतीय चिंतन में यह शत-प्रतिशत सही है। कुछ लोग यह कहते हुए पाए जाते हैं कि वे देशभक्त तो हैं पर राष्ट्रवादी नहीं। ऐसे लोग पाखंडी हैं और प्राकरांतर से स्वयं को सेक्यूलर कहते हैं। वे देशभूमि के साथ भावात्मक संबंध महसूस ही नहीं करते। इस देश में जन्म लेने को, अपने गौरव में शुमार नहीं करते। यदि उनके मकान, दुकान-व्यवसाय, कार-कोठियाँ, बँगले-मॉल हाउस तथा खरीदे या जुटाए गए प्लॉट सुरक्षित हैं तो उनकी निगाह में देश सुरक्षित है। इससे आगे वे सोचना नहीं चाहते। देशभक्ति से उनका क्या काम? वे तो शुद्ध सेक्यूलर हैं, भक्तिभाव से उनका क्या मतलब? सीधे-सीधे कहा जाए तो ऐसे लोग देश-निरपेक्ष हैं और कुछ हद तक देश-विरोधी। अपवाद तो सर्वत्र होता है, पर इस देश के मार्क्सवादी बौद्धिक गुलामों को ऐसी घुट्टी पिलाई जाती है कि मरणान्तक स्थिति में भी वे राष्ट्रभाव का विरोध करते हैं। राष्ट्रद्रोहिता का इससे बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है कि सन् 1962 के चीनी हमले के दौरान इनके सर्वोच्च पोलित ब्यूरो ने अपने कारकुनों को यह आदेश दिया था कि वे रक्तदान करते समय रेडक्रास अधिकारियों को यह लिखकर दें कि उनका रक्त केवल चीनी सैनिकों को

एवम्गते, यह भारतीय राष्ट्रवाद है जिसमें भूमि को माता का दर्जा दिया गया है। लोकतांत्रिक पद्धति की शिक्षा के माध्यम से राष्ट्र को महान् बनाने का संस्कार भारतीय राष्ट्रवाद में निहित है। यह इस देश के लोकतांत्रिक स्वभाव के अनुकूल है। भारतधर्मी समाज के स्वभाव में ही विविधता में एकता का प्राणतत्त्व समाहित है। यही कारण है कि भारतधर्मी समाज के सभी लोग पूरी सहिष्णुता से अपनी-अपनी आस्था से जीवन-यापन करते हैं। भारत का राष्ट्रवाद नस्लीय राष्ट्रवाद से भिन्न है, जो रंग के आधार पर आज भी यूरोपीय देशों के लोकतंत्र में दबे-ढके ढंग से प्रचलित है। भारतधर्मी समाज में गोरे–काले का संकट ही नहीं है।

दिया जाए। एक देशभक्त कम्यूनिस्ट ने ऐसा लिखकर देने का विरोध किया तो पोलित ब्यूरो ने उसे पार्टी से ही अपदस्थ कर दिया था।

राष्ट्रवाद

मूलतः पाश्चात्य ढर्रे से शिल्पित मार्क्सवाद और पूँजीवाद जैसी बुनावट पर राष्ट्रवाद शब्द प्रसारित–प्रचलित हुआ है। तो भी आधुनिक प्रयोग–दृष्टि से राष्ट्रवाद शब्द में वह संपूर्ण भाव निहित है जिससे राष्ट्र की वैचारिक, भाषिक, सांवेधनिक और आध्यात्मिक परंपरा मूर्तिमंत होती है। एवम्गते, यह भारतीय राष्ट्रवाद है जिसमें भूमि को माता का दर्जा दिया गया है। लोकतांत्रिक पद्धति की शिक्षा के माध्यम से राष्ट्र को महान् बनाने का संस्कार भारतीय राष्ट्रवाद में निहित है। यह इस देश के लोकतांत्रिक स्वभाव के अनुकूल है। भारतधर्मी समाज के स्वभाव में ही विविधता में एकता का प्राणतत्त्व समाहित है। यही कारण है कि भारतधर्मी समाज के सभी लोग पूरी सहिष्णुता से अपनी–अपनी आस्था से जीवन–यापन करते हैं। भारत का राष्ट्रवाद नस्लीय राष्ट्रवाद से भिन्न है, जो रंग के आधार पर आज भी यूरोपीय देशों के लोकतंत्र में दबे–ढके ढंग से प्रचलित है। भारतधर्मी समाज में गोरे—काले का संकट ही नहीं है। यहीं भगवान् शिव कपूर्रवत गौर कहे गए हैं तो भगवान् विष्णु, श्रीराम और श्री विष्णु मेघवर्णी माने गए हैं। यहीं गौर और श्यामल दोनों सौंदर्य के प्रतीक हैं। गंगा–यमुनी संस्कृति का प्रसंगार्थ भी यही है और तत्त्वार्थ भी यही है। क्षुद्र राजनीतिक लोग वोट की खातिर इस प्रसंग का कपट–प्रयोग करते हैं।

जिस प्रकार भारतीय राष्ट्रवाद नस्ली राष्ट्रवाद से भिन्न है, उसी प्रकार वह कबीलाई और जिहादीनुमा उस राष्ट्रवाद से भिन्न है जिसका उद्‌देश्य दूसरे देशों पर छद्म आक्रमण करना, लूटपाट करना और धर्मांतरण से अपना प्रभाव बढ़ाना है। इसी दृष्टि से भारत का राष्ट्रवाद साम्राज्यवादी राष्ट्र से भी बहुत दूर है। जो अपनी नीतियों से दूसरे देशों को स्वयं पर निर्भर बनाकर उनका आर्थिक शोषण करते हैं। भारत का राष्ट्रवाद कम्यूनिस्टी राष्ट्रवाद से भी भिन्न है जो समता के नाम पर तानाशाह बनकर स्वयं अपने देश पर निरंकुश शासन करते है।

भारत राष्ट्र की शौर्य परंपरा

यह राष्ट्र प्राचीनकाल से भारत नाम से जाना जाता रहा है। यह राष्ट्र सबसे पुरातन और फिर भी नूतन है। पुरातन मूल्यों का रक्षण करते हुए समय के अनुरूप चलना इसे आता है। अब तक जितनी भी पुरातन सभ्यता–संस्कृतियाँ थीं, वे सारी मध्यकाल की इस्लामिक आँधी में ढह गईं। केवल भारतीय संस्कृति ही इन आक्रमणों का सामना करते हुए आज भी अपने स्वरूप को बनाए हुए हैं। उर्दू के प्रसिद्ध

शायर 'हाली' ने भारत की आंतरिक शक्ति को मुक्त मन से स्वीकार किया है।

मौलाना अल्ताफ हुसैन 'हाली' ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'मुसद्द-दे-हाली' में गंगा की तासीर का बयान करते हुए एक तरफ इस्लाम के बेड़े की तो दूसरी तरफ परोक्ष रूप से भारत-राष्ट्र की शौर्य परंपरा को लक्षित किया है—

वह दीने हिजाजी का बेड़ा
निशां जिसका अक्साए आलम में पहुँचा
मज़ाहम हुआ कोई खतरा न जिसको
न अम्मा में ठटका, न कुल्ज़म में झिझका
किए पै सिमर जिसने सातों समंदर
वह डूबा दहाने में गंगा के आकर।

वस्तुतः विश्व में एकमात्र भारतीय राष्ट्रवाद ही भू-सांस्कृतिक अध्यात्म राष्ट्रवाद है। हजारों वर्ष पूर्व के वैदिक और औपनिषदिक साहित्य से भारत की भू-सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक धारा प्रवाहित होती आ रही है। श्रुति में कहा गया है – माता भूमि, पुत्रोऽहं पृथिव्याः– यह भूमि मेरी माँ है मैं इसका पुत्र हूँ।

अर्थात् अरब देश से चला हुआ इस्लाम का वह बेड़ा, जिसका झंडा पूरी दुनिया में फहर चुका था, जिसकी राह में किसी का डर बाधा नहीं बन पाया जो अरब और बलूचिस्तान के बीच की ओमान (अम्मा) की खाड़ी में नहीं रुका, वह लाल सागर (कुलजम) में भी नहीं झिझका था, जिसने सातों समुद्रों को अपनी तान के नीचे ढ़क लिया था, वह बेड़ा गंगा जी के दहाने (घाट) पर आकर डूब गया।

सन् 1881 में प्रकाशित विलियम हेंटर की बहुचर्चित पुस्तक 'दे इंडियन अम्पायर' के अनुसार सिकंदर भी गंगा के घाट में बसे लोगों से टकराने की जहमत नहीं उठाना चाहता था।

वस्तुत: विश्व में एकमात्र भारतीय राष्ट्रवाद ही भू-सांस्कृतिक अध्यात्म राष्ट्रवाद है। हजारों वर्ष पूर्व के वैदिक और औपनिषदिक साहित्य से भारत की भू-सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक धारा प्रवाहित होती आ रही है। श्रुति में कहा गया है — माता भूमि, पुत्रोऽहं पृथिव्याः— यह भूमि मेरी माँ है मैं इसका पुत्र हूँ। जननी और जन्मभूमि शब्दों की समानपदता में 'वाल्मीकि' के श्रीराम कहते हैं —

अपि स्वर्णमयी लंका, न मे लक्ष्मणरोचते
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी॥

अभिप्राय यह है कि जननी और जन्मभूमि समान रूप से वंदनीय हैं और स्वर्गिक सुख से भी बढ़कर हैं। शिवभक्ति को अर्पित एक श्लोक में स्वदेश को त्रिलोक-पूजित करते हुए कहा गया है —

बाँधवा मानवाः सर्वे,
स्वदेशो भुवनत्रयम्॥

संस्कृति और अध्यात्म तत्त्व वायवी नहीं है अपितु भू माता से ही व्युत्पन्न है। सृष्टि तात्त्विक भूमि में ही शेष चारों भूतात्मक तत्त्वों—जल, अग्नि, वायु और आकाश का सन्निवास है। भूमि के इस आध्यात्मिक महत्त्व को लक्षित करते हुए 'भू सूक्तम्' स्तोत्र में भूमि को विष्णुपत्नी कहा गया है। इसलिए भूमि के रक्षण से उसकी प्रतिष्ठा से, उसके पूजन से पंच भूतात्मक सृष्टि रक्षित, प्रतिष्ठित और पूजित हो जाती है। श्री गुरुनानक देव जी कहते हैं—

पवन गुरु, पानी पिता, माता धरत महत।

सही अर्थों में भारत का यही राष्ट्रीय मनोभाव ही, भू-सांस्कृतिक और आध्यात्मिक राष्ट्रवाद है।

लेखक वरिष्ठ साहित्यकार हैं।

श्रम के देवता भगवान् विश्वकर्मा

भारत एक नैसर्गिक राष्ट्र है। हमारी संस्कृति हजारों वर्ष प्राचीन है। हमारे जीवन-मूल्य, तोड़ने के नहीं, वरन् जोड़ने के लिए हैं। यहाँ मालिक एवं मजदूर का भाव नहीं, वरन् परिवार समुच्चय का भाव प्रमुख रहा है। जीवन के लगभग सभी क्षेत्रों में व्यक्ति-परिवार-गाँव-समाज-देश में एकीकृत, एकात्मभाव प्रधानतः रहा है। श्रम क्षेत्र में 'विश्वकर्मा जयंती' हम सभी लोग निष्ठापूर्वक मनाते रहे हैं, क्योंकि हम मानते हैं कि भगवान् विश्वकर्मा जगत के लिए अनिवार्य हैं। यही तत्त्व, हमारे श्रम एवं श्रमिक को, हमारी सांस्कृतिक परपंराओं के आलोक में, राष्ट्र एवं राष्ट्रवाद के मूल में स्थापित करता है।

ओम प्रकाश मिश्र

श्रम संस्कृति एवं राष्ट्रवाद

श्रम को अर्थशास्त्र के अध्ययन में, सामान्यत: उत्पादन का एक उपादान माना जाता है। पूँजी, भूमि, प्रबंधन आदि अन्य उपादानों की ही तरह श्रम को उत्पादन का एक उपादान मात्र मानना, भारतीय विचार परंपरा नहीं है। वस्तुत: श्रम को उत्पादन का एक उपादान मात्र मानना, पश्चिमी अर्थशास्त्रियों की सोच है। भारतीय विचार परंपरा में श्रम को अत्यंत पवित्र एवं उच्च स्थान प्रदान किया गया है।

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था, जो कि एडम स्मिथ के विचार कि 'अर्थशास्त्र, धन का विज्ञान है' से उद्‌भूत हुई तथा औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप औद्योगीकरण का जो वातावरण, दुनिया में बना, उससे श्रम व श्रमिक को अत्यंत गौण स्थान मिला था। यही स्थिति कमोबेश साम्यवादी अर्थव्यवस्था में भी दिखी। यदि कोई अंतर था तो मात्र इतना कि, पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में श्रम का शोषण पूँजीपति करते थे, जबकि साम्यवादी अर्थव्यवस्था में, शासन-सरकार एवं सत्ताधारी दल द्वारा श्रम का शोषण किया जाता रहा है।

कार्लमार्क्स के 'अतिरिक्त मूल्य के सिद्धांत (थ्यूरी ऑफ सरप्लस वैल्यू)' जो कि उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'दास कैपिटल' में व्याख्यायित की गई थी, के अनुसार श्रमिकों के श्रम की लागत से पूँजीपति को जो अतिरिक्त लाभ होता है, वह 'अतिरेक मूल्य' है, जिसका पूरा लाभ पूँजीपति उठाता है। यह श्रमिकों का स्पष्टत: शोषण है।

पश्चिम की अर्थव्यवस्थाओं से अलग जीवन दृष्टि भारतीय विचार सरणि है, जिसमें श्रम को देवता तक का रूप दिया गया। 'विश्वकर्मा' को हम देवता मानते, जानते एवं पूजते हैं। हमारे यहाँ 'श्रमेव जयते' की मान्यता है। भारतीय परंपरा के अनुसार, मानव शरीर को स्वस्थ बनाए रखने के लिए, मनुष्य द्वारा श्रम करना अत्यंत आवश्यक है। हमारे यहाँ मान्यता है कि व्यक्ति जैसा सोचता है, उसी प्रकार से श्रमपूर्वक कार्य करता है, उसी के अनुसार, वह अपने लक्ष्य को उसी प्रकार प्राप्त करता है। महाभारत में ऐसा बताया गया है कि आलसी एवं अकर्मण्य व्यक्ति को लक्ष्मी की प्राप्ति नहीं हो सकती 'ना कर्मशीले पुरुषे वसामि'।

श्रम एवं श्रमिकों का शोषण, केवल पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में हुआ हो, ऐसा नहीं है। यह ऐतिहासिक तौर पर प्रमाणित है कि श्रम एवं श्रमिकों का शोषण, साम्यवादी अर्थव्यवस्था में भी जारी रहा। यहाँ शासन तंत्र एवं सत्ताधारी दल ने, श्रमिकों को राजनीतिक रूप से इस्तेमाल तो खूब किया, परंतु उनका शोषण करना उन्होंने भी जारी रखा।

भगवान् विश्वकर्मा : श्रम के देवता

इन दोनों प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं से अलग जीवन दृष्टि भारतीय विचार सरणि है, जिसमें श्रम को देवता तक का रूप दिया गया। 'विश्वकर्मा' को हम देवता मानते, जानते एवं पूजते हैं। हमारे यहाँ 'श्रमेव जयते' की मान्यता है। भारतीय परंपरा के अनुसार, मानव शरीर को स्वस्थ बनाए रखने के लिए, मनुष्य द्वारा श्रम करना अत्यंत आवश्यक है। हमारे यहाँ मान्यता है कि व्यक्ति जैसा सोचता है, उसी प्रकार से श्रमपूर्वक कार्य करता है, उसी के अनुसार, वह अपने लक्ष्य को उसी प्रकार प्राप्त करता है। महाभारत में ऐसा बताया गया है कि आलसी एवं अकर्मण्य व्यक्ति को लक्ष्मी की प्राप्ति नहीं हो सकती 'ना कर्मशीले पुरुषे वसामि।' (महाभारत अनु. 30/31) शुक्रनीति में शुक्राचार्य भी श्रम के महत्त्व को समझाते हुए, प्रकारांतर से कहते हैं कि आलस्यपूर्ण जीवन निकृष्ट है, (शुक्रनीति 1/48) विश्व के प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद में स्पष्टतः उल्लेख है कि 'न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः' अर्थात जो व्यक्ति परिश्रम नहीं करता है, उसे देवता भी पसंद नहीं करते हैं यानी उस व्यक्ति से मैत्री नहीं रखते। (ऋग्वेद 4/33/11)

सभ्यता और संस्कृति

संस्कृति, एक समाज में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तांतरित की जाने वाली परंपराओं, कल्पनाओं, मूल्यों एवं सामाजिक पद्धतियों के समुच्चय के रूप में समझा जा सकता है। संक्षेप में संस्कृति, बहुत हद तक उस समाज विशेष के जीवन-मूल्यों से अंतरंग रूप से जुड़ी हुई होती है। संस्कृति एवं सभ्यता का अंतर, इस प्रकार से समझा जा सकता है कि सभ्यता मुख्यतः समाज विशेष के रहन-सहन, वस्त्र-विन्यास, मानव के आचरण की पद्धतियों, स्थापत्य-कला, कौशल आदि बाह्य दिखने वाले उपक्रम हैं, जबकि संस्कृति मूलतः अंतर्निहित, आंतरिक मानसिक दृष्टि जो जीवन पद्धति को संचालित करने वाली होती है। सभ्यता शरीर है तो संस्कृति आत्मा होती है। संस्कृति, सभ्यता का बीज होती है, संस्कृति निराकार होती है। संस्कृति दृष्टिगत नहीं होती है। सभ्यता दिखाई पड़ती है। संस्कृति, वस्तुतः सभ्यता

बलुआ पत्थर से निर्मित एक आर्टिटेक्चरल पैनेल में भगवान विश्कर्मा (10वीं शताब्दी), बीच में गरुड़ पर विराजमान विष्णु हैं, ब्रह्मा हैं तथा दायें तरफ भगवान् विश्वकर्मा हैं।

का उदगम स्थल है और सभ्यता उसको व्यक्त होने पर दिखाई पड़ती है। संस्कृति समाज में सांगोपांग प्रभावी रूप से अंतर्निहित रहती है। वस्तुत: संस्कृति एक से दूसरी, दूसरी से तीसरी पीढ़ी में स्थानांतरित होने एवं कालांतर में परिमार्जित होने वाले जीवनमूल्यों की दिग्दर्शिका है। संस्कृति मनुष्य को शरीर से उन्नत मानव बनाने की चेतना शक्ति का उद्गम है। संस्कृति का परिमार्जन भी विभिन्न कालखंडों में होता रहता है, किंतु कुछ मूल होता है, जो स्थायी प्रभाव वाला होता है।

प्रश्न उठता है कि भारतीय संस्कृति में श्रम एवं राष्ट्रवाद का क्या माहात्म्य है, इसकी व्याख्या एवं विश्लेषण हमें यह स्थापित करने में सहायक होगा कि भारतीय दृष्टि में श्रम, संस्कृति एवं राष्ट्रवाद किस प्रकार से एक दूसरे से असंपृक्त हैं।

राष्ट्र

'राष्ट्र' शब्द को अधिकांशत: लोग, देश का समानार्थी समझते हैं। परंतु ऐसा नहीं है। देश के लिए, भूमि व जन आवश्यक हैं। परंतु मात्र इन दो तत्त्वों से राष्ट्र नहीं बनता। देश एवं 'राष्ट्र' की संकल्पना में मुख्य अंतर यह है कि 'राष्ट्र' के लिए मातृभूमि के प्रति आदर का भाव एवं समान संस्कृति होना आवश्यक है। यदि मातृभूमि के प्रति आदर भाव यानी भारत माता की संकल्पना को हटा दें तो वह फिर जमीन का एक टुकड़ा रह जाएगा, जिस पर लोग रह रहे हैं।

देश एवं राज्य का अर्थ 'राष्ट्र' से इसलिए भिन्न है कि 7वीं शताब्दी में हर्षवर्द्धन का राज्य नर्मदा के उत्तर में था, तो दक्षिण में पुलकेशी का शासन था। यानी राज्य दो थे, किंतु 'राष्ट्र' एक ही था। वस्तुत: जन (लोग) तथा भूमि का परस्पर संबंध माता एवं पुत्र का होता है। हमारी राष्ट्रीयता का भाव ही भारतमाता है।

राष्ट्र का अर्थ लोगों की भीड़ नहीं। लोगों का राष्ट्र बनने के लिए तीन शर्तें आवश्यक हैं। (1)

जिस देश में लोग रहते हैं, उस भूमि के विषय में मातृभाव का लोगों में रहना (2) अपने पुरखों, अपनी परंपराओं का सम्मान (3) समान जीवन-मूल्य व समान संस्कृति। पिछले कालखंड में जब हम राजनीतिक रूप से स्वतंत्र नहीं थे, उसके पहले से भारत राष्ट्र में अनेकों राज्य (स्टेट) थे, किंतु भारत राष्ट्र एक ही था और आगे भारत राष्ट्र निरंतर रहा।

जब हम पुरखों के प्रति आदर भाव की बात करते हैं तो स्पष्ट होता है कि महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी और गुरु गोविंद सिंह जी का स्मरण हम अत्यंत आदर से करते हैं, जबकि औरंगजेब, लार्ड क्लाइव और डलहौजी का नाम ध्यान में आता है तो एक विदेशी आक्रांता का भाव स्वाभाविक रूप से होता है। यानी समान संस्कृति में यही तत्त्व प्रमुख है। हमारे यहाँ सभी मनुष्यों, पशु-पक्षियों, वनस्पतियों, नदियों, वृक्षों, जलाशयों में अपनत्व देखा जाता है। हमारी संस्कृति 'वसुधैव कुटुंबकम्' की है।

दीनदयाल उपाध्याय जी का विचार है कि 'भूमि, जन और संस्कृति से राष्ट्र उत्पन्न होता है, जिससे इन तीनों की अभिवृद्धि, समृद्धि होती है, वह धर्म है। भारतीय संस्कृति को परिभाषित करना कठिन है, परंतु इसे महसूस किया जा सकता है। यह किसी की वैयक्तिकता का विध्वंस किए बिना सामाजिक चेतना का निर्माण करती है। सिर्फ भारतीय संस्कृति ही पूरे भारत के लोगों को एक सूत्र में पिरो सकती है, यही हमारे मन में मातृभूमि के प्रति प्रेम और श्रद्धा तथा गौरव की भावना का संचार कर सकती है।' (दीनदयाल उपाध्याय: संपूर्ण वाङमय (खंड दस): डॉ. कृष्ण गोपाल की भूमिका, पृष्ट 41)।

दीनदयाल जी राष्ट्र एवं संस्कृति के परस्पर संबंधों पर अत्यंत तीक्ष्ण-चिंतन-दृष्टि रखते हैं 'यह एक त्रिकालाबाधित सत्य है कि राष्ट्रभाव को छोड़कर कोई भी राष्ट्र उन्नति नहीं कर सकता, न अतीत में कर सका, न भविष्य में कर सकेगा। अत: राष्ट्रोद्धार का विचार करने वाले देशभक्त को इस मूल समस्या पर विचार करना चाहिए। जब तक धर्म और संस्कृति के बारे में पूर्वाग्रह छोड़कर उसके व्यापक और सनातन तत्त्व का साक्षात्कार कर

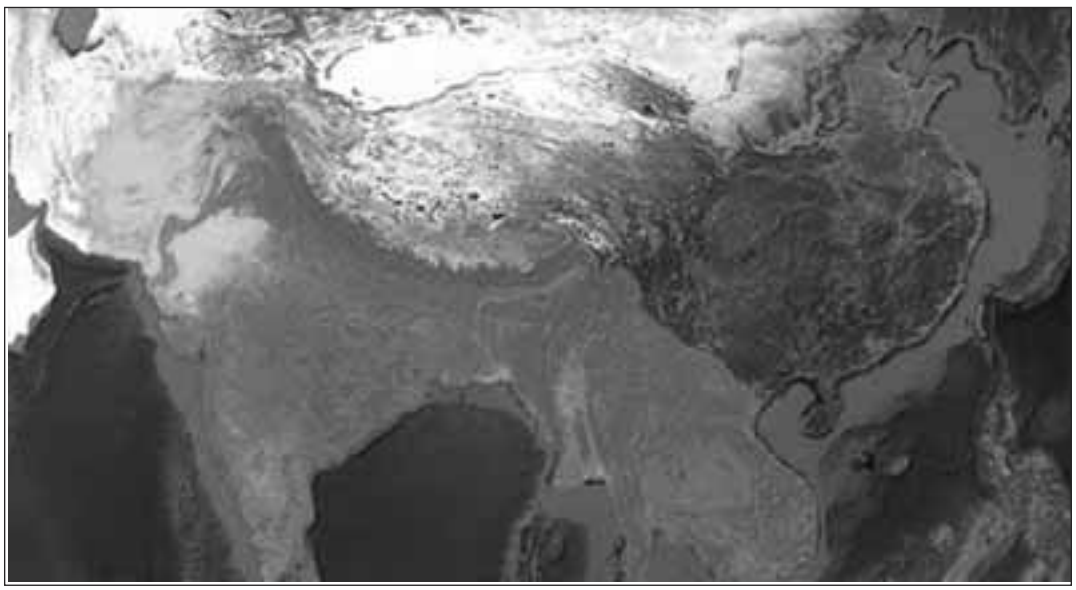

राष्ट्रजीवन को सुदृढ़ बनाने का प्रयास नहीं होता, तब तक हमारी सर्वांगीण उन्नति का पथ अवरुद्ध ही रहेगा।' पांचजन्य, दिसंबर, 05,1960 दीनदयाल उपाध्याय: संपूर्ण वाङ्मय (खंड 8) पृष्ट 231।

राष्ट्र निर्माण में श्रम भूमिका

किसी भी राष्ट्र के सर्वांगीण विकास में श्रम तथा श्रमिक की भूमिका सदैव महत्त्वपूर्ण होती है। पूरे विश्व में मूलत: दो प्रकार की अर्थव्यवस्थाएँ है।

1. **पूँजी प्रधान अर्थव्यवस्थाएँ:** ये वे अर्थव्यवस्थाएँ हैं, जिनमें पूँजी की उपलब्धता अधिक एवं श्रम की उपलब्धता कम होती है। यहाँ सामान्यत: जनसंख्या कम होती है। भूमि पर जनसंख्या का घनत्व कम होता है। यथा-अमरीका, कनाडा आदि।

जिन देशों में पूँजी की उपलब्धता कम है तथा श्रम की उपलब्धता प्रचुर मात्रा में है, वहाँ भी पूँजी प्रधानता की दृष्टि से आर्थिक नीतियाँ अपनाई गई हैं। इस प्रकार की नीतियाँ वस्तुत: इस प्रकार पूँजी प्रधान तकनीकों पर आधारित आर्थिक मॉडलों से बेरोजगारी में वृद्धि, पर्यावरण के क्षति, समाज में असमानता, विदेशी कर्ज की वृद्धि तथा राष्ट्र के आत्मविश्वास में कमी जैसे घातक परिणाम सामने आए हैं।

2. **श्रम प्रधान अर्थव्यवस्थाएँ:** यह उस प्रकार की अर्थव्यवस्थाएँ हैं, जिनमें श्रम प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है तथा पूँजी की उपलब्धता तुलनात्मक रूप से कम होती है। यथा-भारत, पाकिस्तान आदि।

दुर्भाग्य की बात यह है कि जिन देशों में पूँजी की उपलब्धता कम है तथा श्रम की उपलब्धता प्रचुर मात्रा में है, वहाँ भी पूँजी प्रधानता की दृष्टि से आर्थिक नीतियाँ अपनाई गई हैं। इस प्रकार की नीतियाँ वस्तुत: इस प्रकार पूँजी प्रधान तकनीकों पर आधारित आर्थिक मॉडलों से निम्नांकित परिणाम सामने आए हैं—

1. बेरोजगारी में वृद्धि
2. पर्यावरण की क्षति
3. समाज में आय का विषम वितरण असमानता
4. विदेशी कर्ज की वृद्धि
5. राष्ट्र के आत्मविश्वास में कमी

इन परिस्थितियों पर दृष्टि डालते हुए प्रख्यात चिंतक मनीषी दंतोपंत ठेंगड़ी ने निम्नाकिंत व्यावहारिक सुझाव दिए थे—

1. 'एकाधिकारिक पूँजीवाद के स्थान पर अर्थव्यवस्था में बाजार की शक्तियों के प्रभाव से मुक्त, स्वतंत्र प्रतियोगिता को लाया जाए।
2. रोजगार के आधार पर मजदूरी के स्थान पर, स्वयं रोजगार की नीतियों को लाया जाए।
3. लगातार बढ़ती आर्थिक विषमताओं के स्थान पर, न्यायपूर्ण समानता हेतु सार्थक प्रयास किए जाएँ।
4. प्रकृति के भयानक शोषण के स्थान पर, उसका विचारवान तरीके से उपयोग किया जाए।
5. व्यक्ति, समाज एवं प्रकृति के मध्य टकराव के स्थान पर, तीनों के मध्य मधुर एवं पूर्ण तादात्म्य लाया जाए।

उपर्युक्त विचार दंतोपंत ठेंगड़ी जी ने वाशिंगटन, अमरीका में 6 से 8 अगस्त, 2000 को 'वर्ल्ड विजन-2000' में अपने व्याख्यान में व्यक्त किए थे।

('ग्लोबल इकनामिक सिस्टम: द हिंदू व्यू' 'द थर्ड वे' में संकलित, पृष्ठ 32 व 33, साहित्य सिंधु प्रकाशन, बंगलौर, दिसंबर, 2017)

उपर्युक्त विचार, मूलत: भारत राष्ट्र की विचार परंपरा से ओतप्रोत हैं। वेदों, उपनिषदों, स्मृतियों, एवं

मनीषियों की चिंतन परंपरा पर आधारित हैं।

श्रम और उद्योग के क्षेत्र में, भारतीय दृष्टि यह है कि मानव श्रम भी एक प्रकार की पूँजी ही है। एक श्रमिक के श्रम का मूल्यांकन यदि अंशपूँजी (शेयर) में रूप में किया जाए और उन्हें प्रेरित किया जाना चाहिए कि वे अंशधारी (शेयर होल्डर) बनें। यदि इस प्रकार की दृष्टि हो तो, राष्ट्र की अर्थव्यवस्था में, मानवीय विकास का सूचकांक निश्चित रूप से बढ़ेगा। वस्तुत: श्रम की आदर्श स्थिति तो स्वरोजगार (सेल्फ इम्प्लॉयमेंट) की ही होती है। जहाँ कोई मालिक और कोई मजदूर नहीं होता।

श्रमेव जयते

अर्थव्यवस्था के विकेंद्रीकरण, ग्रामीण उद्योगों, कुटीर उद्योगों, कम पूँजी की छोटी-छोटी इकाइयों वाले छोटे-छोटे उद्योग, सहकारिता, कुटीर उद्योग एवं परिवार आधारित उद्यमों का विकास ही, हमें श्रम का मान-सम्मान बढ़ाने में सहायक होगा। भारतीय जीवन दृष्टि में 'श्रमेव जयते' का यही सही निरूपण होगा।

वस्तुत: भारत के लिए न तो पूँजी प्रधान तकनीक की अधिक आवश्यकता है और न ही बिल्कुल अवैज्ञानिक अकुशल प्रौद्योगिकी की आवश्यकता है। चूँकि भारत में श्रमशक्ति प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है, इसलिए मूलत: श्रमप्रधान तकनीकों का ही प्रयोग होना चाहिए, जिससे रोजगार निर्माण का पथ-प्रशस्त हो सकेगा। केवल उन क्षेत्रों में पूँजी-प्रधान तकनीकों का प्रयोग होना चाहिए, जो राष्ट्र की सुरक्षा, नाभिकीय ऊर्जा, अंतरिक्ष-प्रौद्योगिकी सदृश क्षेत्रों के लिए ही आवश्यक हों।

रोजगार निर्माण हेतु एवं आय के मानवतावादी वितरण को दृष्टि में रखते हुए ही महात्मागांधी, विनोबा भावे, राममनोहर लोहिया, दीनदयाल उपाध्याय, प्रो.जे.के.मेहता सदृश विचारकों ने

श्रमप्रधान तकनीकों के प्रयोग हेतु कहा था।

वस्तुत: 'तेन त्यक्तेन भुंजीथा' का जीवन दर्शन यानी त्यागपूर्वक भोग करना हमारे मनीषियों ने सुझाया था। 'नहि वित्तेन तर्पणीयो मनुष्या:' यानी धन संपत्ति से कोई मनुष्य संतुष्ट नहीं हो सकता, ये चिंतन भी श्रमप्रधान तकनीकों के इस्तेमाल तथा स्वरोजगार की आवश्यकता को स्पष्ट करता है। परिवार-आधारित-उद्योग, इस दृष्टि से एक वरणीय सुझाव है, जिसमें श्रम की महत्ता महनीय होगी। राष्ट्र का भाव भी उत्तम प्रकार से मनोमस्तिष्क में रहेगा।

राष्ट्र की अर्थव्यवस्था के सर्वांगीण विकास के लिए, कौशल तथा पुरुषार्थ को जोड़ने की आवश्यकता है। कुशल श्रम के द्वारा राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का विकास, पुरुषार्थ (जिसमें कौशलयुक्त श्रम का पराक्रम) का विकास एवं राष्ट्र की समग्रता में व्यक्तिगत समुन्नति भी सुनिश्चित होगी। यह श्रम की व्यष्टि एवं समष्टि, दोनों ही रूपों में राष्ट्र की सेवा तथा संरक्षा का दायित्व निभाने में समर्थ होगा। हमारी संस्कृति की चिंतन धारा की दृष्टि से भी यह उपयुक्त है।

स्माल इज ब्यूटीफुल

श्रमप्रधान तकनीकों के इस्तेमाल में, जो ध्यान देने की बात है, वह यह कि पुरानी तकनीकों की उत्पादकता बढ़ाने के लिए अपेक्षित सुधार एवं विकास किया जाए, परंतु ध्यान यह रखना होगा कि वे श्रम को हटाने न लगें। श्रम एवं श्रमिकों का आदर्श उपयोग होना चाहिए ताकि श्रम उत्पादक भी रहे तथा श्रमिक का मान-सम्मान भी रहे। इसी कड़ी एवं विचार-शृंखला में ई.एफ सुमाखर ने मध्यवर्ती तथा उपयुक्त प्रौद्योगिकी का विचार अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'स्माल इज-ब्यूटीफुल' में दिया है। यह विचार भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए अनुकूल होगा।

कौशल विकास

भारत राष्ट्र की संस्कृति में, हमने कभी अपने विचारों में सुधारों को नकारात्मक दृष्टि से नहीं देखा। श्रम की महत्ता बनाए रखने तथा उसका विकास/संवर्द्धन करने के लिए, पुरानी तकनीक में सुधार एवं विकास, हमारी विचार परंपरा की दृष्टि से उचित एवं अनुकूल है। राष्ट्र की अर्थव्यवस्था के सर्वांगीण विकास के लिए, कौशल तथा पुरुषार्थ को जोड़ने की आवश्यकता है। कुशल श्रम के द्वारा राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का विकास, पुरुषार्थ (जिसमें कौशलयुक्त श्रम का पराक्रम) का विकास एवं राष्ट्र की समग्रता में व्यक्तिगत समुन्नति भी सुनिश्चित होगी। यह श्रम की व्यष्टि एवं समष्टि, दोनों ही रूपों में राष्ट्र की सेवा तथा संरक्षा का दायित्व निभाने में समर्थ होगा। हमारी संस्कृति की चिंतन धारा की दृष्टि से भी यह उपयुक्त है।

राष्ट्रहित और श्रम

श्रम संघों का स्थान, प्रत्येक अर्थव्यवस्था में महत्त्वपूर्ण होता है, क्योंकि उद्योगों में कार्यरत संगठित श्रमिकों का संगठन तो रहता ही है। किंतु आवश्यकता इस बात की है कि राष्ट्रवाद को केंद्र में रखकर, श्रमसंगठन अपनी नीतियाँ बनाएं एवं कार्य करें। भारतीय अर्थ चिंतन पर आधारित संगठन ही श्रेयस्कर हैं। 'चाहे जो मजबूरी हो, हमारी माँगे पूरी हो' यह दृष्टि उचित नहीं है। यदि राष्ट्र ही नहीं मजबूत होगा तो उद्योग कहाँ से बचेंगे जब उद्योग हीं नहीं होंगे, तो श्रमिक का भविष्य क्या होगा।

वस्तुत: राष्ट्र का हित, उद्योग का हित एवं श्रमिक के हित में संतुलन तथा तादात्मय की आवश्यकता

होती है।

हमारे राष्ट्र में श्रम एवं श्रमिक की महत्ता बतलायी गई है। हमारे यहाँ कार्य/कर्म ही पूजा/आराधना का भाव रहता है। परंतु अधिक कार्य करने पर, असीमित उपभोग को श्रेयस्कर नहीं माना जाता। हमें नियंत्रित उपभोग एवं आवश्यकताओं को सीमित करने का उपाय करना चाहिए। प्रो. जे. के. मेहता ने 'आवश्यकता रहितता' का सिद्धांत दिया था, वह हमारी भारतीय अर्थचिंतन धारा ही है। यानी विलासितापूर्ण उपभोग राष्ट्र के लिए उचित नहीं है।

राष्ट्रीयकरण तो राजनीतिक-आर्थिक दृष्टि से केंद्रीकरण की प्रवृत्तियों को बढ़ाता है। यदि 'राष्ट्रीयकरण' प्रत्येक समस्या का इलाज होता तो, आज भारत सहित अन्य देशों में श्रमक्षेत्र एवं आर्थिक क्षेत्र में, समस्याएं कम होती। सहकारी क्षेत्र का विकास, स्वयं-रोजगार के क्षेत्र को सक्रिय प्रोत्साहन एवं विकेंद्रीकृत इकाइयों द्वारा छोटी-छोटी औद्योगिक इकाइयाँ हमारे देश के लिए श्रेयस्कर हैं। कम आय वाले लोगों को शेयर होल्डर बनाकर, सेल्फहेल्प ग्रुप बनाकर भी विकेंद्रीकृत आर्थिक विकास की दिशा में अग्रसर हो सकते हैं।

राष्ट्रीयकरण है केंद्रीयकरण

विश्व में उद्योगों के 'राष्ट्रीयकरण' का फैशन सा पिछले पचास वर्षों में दिखलायी पड़ता है। यह राष्ट्रीयकरण तो राजनीतिक-आर्थिक दृष्टि से केंद्रीकरण की प्रवृत्तियों को बढ़ाता है। यदि 'राष्ट्रीयकरण' प्रत्येक समस्या का इलाज होता तो, आज भारत सहित अन्य देशों में श्रमक्षेत्र एवं आर्थिक क्षेत्र में, समस्याएं कम होती। सहकारी क्षेत्र का विकास, स्वयं-रोजगार के क्षेत्र को सक्रिय प्रोत्साहन एवं विकेंद्रीकृत इकाइयों द्वारा छोटी-छोटी औद्योगिक इकाइयाँ हमारे देश के लिए श्रेयस्कर हैं। कम आय वाले लोगों को शेयर होल्डर बनाकर, सेल्फ-हेल्प ग्रुप बनाकर भी विकेंद्रीकृत आर्थिक विकास की दिशा में अग्रसर हो सकते हैं।

श्रमिक संगठन और राजनीति

श्रम क्षेत्र के श्रमिक संघों की एक परपंरागत अवधारणा यह है कि वे देश से केवल मजदूरी, बोनस आदि आर्थिक लाभ लेने एवं सेवा शर्तों के लिए ही कार्य करते हैं। इसका एक पहलू यह भी विचारणीय है कि संगठित क्षेत्र में, जहाँ एक ओर श्रमिकों को वेतन, भत्ते, बोनस एवं सेवाशर्ते अच्छी तथा संतोषजनक कही जा सकती हैं, वहीं दूसरी ओर असंगठित क्षेत्र जैसे-रिक्शे वाले, दिहाड़ी मजदूर आदि की स्थिति अच्छी एवं संतोषजनक नहीं है। असंगठित क्षेत्रों के श्रम संगठनों पर अक्सर बाहरी लोगों (मुख्यत: राजनीतिक) का नियंत्रण हो जाता है और वे क्षुद्र राजनीतिक हितों की पूर्ति के औजार बन जाते हैं। यह भी दुर्भाग्यपूर्ण है कि असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों के लिए उनके सामान्य सेवा काल में सामाजिक सुरक्षा की भी समुचित व्यवस्था नहीं है। संगठित क्षेत्र के श्रमिकों एवं श्रमिक संघों की सोच में बदलाव की जरूरत है कि असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों के विषय में भी सहयोग का भाव होना चाहिए। एक बड़ी समस्या और है कि श्रमिक, श्रम संघों एवं उनके नेताओं के साथ यह है कि वे प्रत्येक समस्या का इलाज केवल सरकारों से ही चाहते हैं। स्वयं संगठनात्मक सहयोग, समाज का

सहयोग भी इस क्षेत्र में आवश्यक होता है।

एकात्म जीवन दृष्टि

भारत राष्ट्र में, गुलामी के दिनों के पहले, समाज स्वत: बहुत प्रकार की सामाजिक सुरक्षा स्वत: कर लेता था। सरकारों/राजाओं से बहुत ज्यादा प्रत्याशा लोग नहीं रखते थे। आज श्रम, श्रमसंघों व समाज को राष्ट्र-नीति को ध्यान में रखकर कार्य करना श्रेयस्कर होगा। हमारी संस्कृति, रोजी-रोटी श्रम-संघ की नहीं रही है। हम, एकात्म जीवन-दृष्टि से परिवार-समाज-राष्ट्र को देखते रहे हैं, उसे पुन: से स्थापित किए जाने की आवश्यकता है।

राष्ट्रीय स्तर पर यह सोच विकसित करने की आवश्यकता है कि, राष्ट्र निर्माण का कार्य, शासकीय सत्ताओं पर ही पूर्णरूपेण आधारित रखना उचित नहीं है। शासकीय सत्ता, राष्ट्र के अनेक साधनों में से एक प्रमुख साधन है। परंतु राष्ट्र का निर्माण, स्वायत्त स्वयं शासित, सामाजिक आर्थिक इकाइयों के स्वस्थ संगठन पर आधारित होती है। श्रम संघों को भी यह तथ्य समझाना चाहिए।

वसुधैव कुटुंबकम्

हमारे भारत राष्ट्र में सर्वोच्च सत्ता, राजा की नहीं रही है, वरन् धर्मसत्ता की रही है। यहाँ 'धर्म' शब्द रेलिजन (या पंथ) नहीं है। पूँजीवादी देशों, साम्यवादी देशों तथा अन्य देशों में सर्वोच्च अधिकार प्राप्त संस्था-राजसत्ता या सरकारें होती हैं। हमारे यहाँ धर्मदंड, राजदंड के ऊपर है। अन्य देशों में साधनों की शुचिता या महात्मा गांधी का मींस टेंस का विचार नहीं है, वे येन-केन-प्रकारेण, लक्ष्य पाना चाहते हैं। हम लोग धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष की अवधारणा से बंधे हैं। हमारे यहाँ 'वसुधैव कुटुंबकम' का भाव है, सारे जगत् के प्राणी हमारे अपने हैं।

वर्तमान काल में 'संघेशक्ति कलौयुगे' का भाव है। 'श्रमेव जयते' को इसमें मिलाकर हम राष्ट्र के अभीष्ट आर्थिक लक्ष्यों को प्राप्त कर सकते हैं। हमारे यहाँ आदि काल से, 'तेन त्यक्तेन भुंजीथा' ईशावास्योउपनिषद से हमें प्रेरणा देता हैं, कि मात्र भौतिक उपलब्धियों की ओर अंधाधुंध नहीं भागना चाहिए। संयमित उपभोग हमारी अपनी संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग रहा है। भारत राष्ट्र एक बहुआयामी सांस्कृतिक मूल्यों के समुच्चय को अपने में समेटे हुए है।

भारत एक नैसर्गिक राष्ट्र है। हमारी संस्कृति हजारों वर्षों प्राचीन है। हमारे जीवन-मूल्य, तोड़ने के नहीं, वरन् जोड़ने के लिए हैं। यहाँ मालिक एवं मजदूर का भाव नहीं, वरन् परिवार समुच्चय का भाव प्रमुख रहा है। जीवन के लगभग सभी क्षेत्रों में व्यक्ति-परिवार-गाँव-समाज-देश में एकीकृत, एकात्मभाव प्रधानत: रहा है। श्रम क्षेत्र में 'विश्वकर्मा जयंती' हम सभी लोग निष्ठापूर्वक मनाते रहे हैं, क्योंकि हम मानते हैं कि भगवान् विश्वकर्मा जगत के लिए अनिवार्य हैं। यही तत्त्व, हमारे श्रम एवं श्रमिक को, हमारी सांस्कृतिक परपंराओं के आलोक में, राष्ट्र एवं राष्ट्रवाद के मूल में स्थापित करता है।

लेखक इलाहाबाद विश्वविद्यालय प्रयाग के अर्थशास्त्र विभाग के पूर्व प्रवक्ता है।

भारतीय परिवार प्रणाली में पुरातन काल ही से बालक अपने दादा-दादी की गोद में बैठकर नीति कथाओं का श्रवण करते हुए ज्ञान अर्जित करता आया है। आज भी घर-परिवारों में यह परंपरा विद्यमान है। बालक परिवार में रहकर बड़ों की सेवा, परिजनों का आज्ञापालन, गृहकार्य में सहयोग, माता-पिता का सम्मान, कार्यव्यवहार में शालीनता, श्रम कार्य में भागीदारी तथा सेवा के अवसर प्राप्त कर जीवनोपयोगी आदर्शों का अनुगमन करता है। यही उसको उत्तम नागरिकता की दिशा में प्रवृत्त करती है।

शंकर लाल महेश्वरी

बालक की प्रथम पाठशाला है 'परिवार'

कहा गया की है कि बालक अपना प्रथम पाठ माँ के चुंबन और पिता के प्यार से ही सीखता है। वस्तुत: परिवार ही बालक की प्रथम पाठशाला है। जहाँ अपने परिजनों की छाया तले बैठकर अपनी सुषुप्त क्षमता व प्रतिभा को उजागर करता है। अत: माता-पिता को तथा परिजनों को अपने कार्य व्यवहार से बालक का उचित पोषण करना चाहिए, ताकि वह उत्तम जीवन यापन हेतु शिक्षा ग्रहण कर सके। सामाजिक प्राणी होने के कारण बालक में उन दक्षताओं का अविर्भाव होना चाहिए, जो एक सामाजिक के लिए अनिवार्य होती हैं। परिवार में रहकर जहाँ बालक कर्तव्य पालन का पाठ सीखता है, वहीं उसके नैतिक गुणों का भी विकास होता है। बाल्यावस्था से ही बालक की गतिविधियों, वृत्तियों और आदतों का आकलन करते हुए उसे सही दिशा में अग्रसर करना माता-पिता का उत्तरदायित्व है। वही समाज विकसित माना जाता है जिसके सभी सदस्य मानवीय गुणों को जीवन का आधार बनाकर जीवन जीने का सद्प्रयास करते हैं।

आज का बालक कल का नागरिक होता है। अत: एक उत्तम कोटि का नागरिक बनने के लिए सहयोग की वृत्ति, सहिष्णुता, नैतिकता, उदारता, सदाशयता, अनुशासन, श्रमनिष्ठा तथा सम्मानभावना और अन्य मानवीय मूल्यों को जीवन का आधार बनाना होता है। इन सारे संस्कारों का आविर्भाव माता-पिता के दिशा निर्देश तथा कार्यव्यवहार पर निर्भर

है, जहाँ बालक देखकर व सुनकर सीखता है।

भारतीय परिवार प्रणाली में पुरातन काल ही से बालक अपने दादा-दादी की गोद में बैठकर नीति कथाओं का श्रवण करते हुए ज्ञान अर्जित करता आया है। आज भी घर-परिवारों में यह परंपरा विद्यमान है। बालक परिवार में रहकर बड़ों की सेवा, परिजनों का आज्ञापालन, गृहकार्य में सहयोग, माता-पिता का सम्मान, कार्यव्यवहार में शालीनता, श्रम कार्य में भागीदारी तथा सेवा के अवसर प्राप्त कर जीवनोपयोगी आदर्शों का अनुगमन करता है। यही उसको उत्तम नागरिकता की दिशा में प्रवृत्त करती है।

परिवार में रहकर बालक अपनी निजी क्षमताओं का विकास करता है तथा सामाजिक जीवन जीने की तैयारी भी करता है। आवश्यकता इस बात की हैं कि माता-पिता अपनी संतान को उसकी कार्यक्षमता, दक्षता तथा कुशलताओं को उजागर करने के लिए पर्याप्त अवसर व मार्गदर्शन प्रदान करें। बालक को आत्मनिर्भर बनाने के लिए उसे श्रम कार्य हेतु प्रवृत्त करना जरूरी है।

बालक की जिद्दी प्रवृत्ति, अनुशासनहीनता, अशिष्टता तथा असभ्यता की दिशा में अग्रसर होने की स्थिति में माता-पिता का ही नियंत्रण औषध स्वरूप बन जाता है। बालक की निजी समस्याओं के समाधान हेतु माता-पिता संवेदनशील रहें तथा बालक को निकट से समझने के लिए उसके पास बैठने का समय भी निकाल सकें। अभिभावक का दिशा-बोध बालक की विकास यात्रा में पूर्णत: सहयोगी होता है।

बालक पर अनावश्यक दबाव, शोषण तथा धिक्कारना, पीटना और भयभीत करना उसके साहस व उत्साह को कुंठित करता है तथा उसकी प्रगति में बाधक हो जाता है। उसे पारिवारिक परिस्थितियों से अवगत कराते हुए मार्गदर्शन देना चाहिए। आचरण सुधार के लिए बालकों को समय-समय पर नीति कथाएँ, बोध कथाएँ तथा लघु कथाएँ, कहानियों से उसमे वैचारिक समरसता पैदा की जा सकती है। प्राचीन काल में बिगडैल राजकुमारों के आचरण सुधार हेतु विष्णु शर्मा जैसे गुरु पंचतंत्र, हितोपदेश की बोध कथाएँ व प्रेरक प्रसंग सुनाकर उनका मार्ग प्रशस्त करते थे। परिवार में रहकर बालक को रोगी-सेवा, समाजोपयोगी कार्य तथा श्रम कार्य के लिए प्रेरित करना चाहिए। बालकों की नेतृत्व क्षमता का भी विकास हो, इसके लिए परिवार में पर्याप्त अवसर प्रदान किया जाए।

निजी क्षमताओं का विकास

परिवार में रहकर बालक अपनी निजी क्षमताओं का विकास करता है तथा सामाजिक जीवन जीने की तैयारी भी करता है। आवश्यकता इस बात की हैं कि माता-पिता अपनी संतान को उसकी कार्यक्षमता, दक्षता तथा कुशलताओं को उजागर करने के लिए पर्याप्त अवसर व मार्गदर्शन प्रदान करें। बालक को आत्मनिर्भर बनाने के लिए उसे श्रम कार्य हेतु प्रवृत्त करना जरूरी हैं। पारिवारिक जीवन में रहकर उसे व्यावसायिक बोध भी देना आवश्यक है। यदि माता-पिता का आचरण उत्तम है, श्रेष्ठ जीवनशैली है, बच्चों के प्रति अगाध स्नेह और सम्मान भावना है, तो बालक निश्चित रूप से प्रगतिशील बनेगा। जिस परिवार में अनैतिक आचरण, कुंठित व्यवहार, झगड़ालू दृश्य, बेईमानी, क्रूरता और अनैतिकता का वातावरण होगा, उस परिवार के बच्चे बिगड़ेल होंगे और आगे जाकर उनकी गणना असामाजिक तत्त्वों में होने लगेगी अत: माता-पिता को अपने व्यवहार, आचरण तथा दिनचर्या में अपना आदर्श स्वरूप प्रस्तुत करना

आवश्यक है जिसका सीधा प्रभाव बालकों के कोमल मन पर पड़ता है और वे प्रभावित होते हैं।

बालक को निर्भय बनाएँ

बालक को कठिनाइयों का मुकाबला करना भी सिखाएँ, उसे निडर बनाने का प्रयत्न करें। बेईमानी से दूर रखते हुए सफल जीवन जीने की शिक्षा दें, ताकि आगे जाकर वह उत्तम मार्ग का अनुसरण कर सकेगा। अक्सर देखा गया है कि जो संतान आगे जाकर चोरी, डकैती, गुंडागर्दी और असामाजिक कार्यों में लिप्त होती हैं, उनका पारिवारिक परिवेश अत्यधिक दूषित होता है। ऐसे वातावरण में रहकर ही बालक दूषित प्रवृत्तियों को अपनाते हुए आगे जाकर असामाजिक बन जाता है।

परिवार में रहकर बालक अपने माता-पिता के श्री चरणों में बैठकर उत्तम कोटि के संस्कार अर्जित करता है। बालक को माता-पिता की सेवा, ईश वंदना, घर की साफ-सफाई, रोगी-सेवा, गरीबों के प्रति संवेदनशीलता, ईमानदारी, पारिवारिक कार्यों में भागीदारी, परिजनों का आज्ञापालन, बड़ों के प्रति सम्मान भाव तथा राष्ट्रीय महत्त्व के कार्यों में संलग्न होने की सीख मिलती रहे, तो कल का यह नागरिक श्रेष्ठ समाज सुधारक के रूप में प्रस्तुत होगा।

परिवार में रहकर बालक अपने माता–पिता के श्री चरणों में बैठकर उत्तम कोटि के संस्कार अर्जित करता है। बालक को माता–पिता की सेवा, ईश वंदना, घर की साफ –सफाई, रोगी–सेवा, गरीबों के प्रति संवेदनशीलता, ईमानदारी, पारिवारिक कार्यों में भागीदारी, परिजनों का आज्ञापालन, बड़ों के प्रति सम्मान भाव तथा राष्ट्रीय महत्त्व के कार्यों में संलग्न होने की सीख मिलती रहे, तो कल का यह नागरिक श्रेष्ठ समाज सुधारक के रूप में प्रस्तुत होगा। परिवार में रहते हुए बालक को जनसंख्या नियंत्रण, जल संरक्षण, पौधारोपण, भ्रूणहत्या, अशिक्षा, महिला उत्पीड़न और सरकारी योजनाओं की जानकारी मिल सके, तो प्रसंगानुसार प्रयास करना चाहिए। यदि परिवार में ही बालक को उचित दिशा बोध मिलता रहेगा तो आगे जाकर विद्यालयी शिक्षा में भी वह अग्रगण्य रहेगा। उसे विद्यालय की गतिविधियों द्वारा अर्जित संस्कारों को प्रगाढ़ता मिलेगी और वह एक श्रेष्ठ विद्यार्थी के रूप में शिक्षा ग्रहण करने में सफलता अर्जित करते हुए कीर्तिमान स्थापित कर पाएगा।

आज का युग वैज्ञानिक युग है। सूचना और तकनीकी के क्षेत्र में काफी प्रगति हुई है। आज नन्हे बालक भी स्मार्ट फोन पर अपनी अँगुंलियाँ थिरकाते नहीं थमते। कंप्यूटर का प्रारंभिक ज्ञान भी अधिकांशत: घर पर मिल जाता है। जो परिवार साधन संपन्न है। उन्हें बच्चों को नवीनतम तकनीकी ज्ञान प्राप्ति के लिए प्रेरित करना चाहिए। वर्तमान शासन व्यवस्था में काफी फेरबदल हो रहा है। कैशलेस लेनदेन पर बल दिया जा रहा है। राष्ट्र की लोक कल्याणकारी योजनाओं से भी परिचय मिल सके, ऐसा प्रयत्न किया जाए, तो बच्चों के भावी जीवन में उपयोगी सिद्ध होगा।

जो बालक सामान्य से हटकर विशेष ऊर्जावान होते हैं, कभी–कभी उनकी अपराध प्रवृत्ति से अभिभावक पीड़ित हो जाते हैं। इसके लिए उनकी असामान्य वृति का मार्गान्तरीकरण करना चाहिए। जिस प्रकार बाढ़ का अपार जल प्रवाह खेतों को नष्ट कर सकता है, यदि उस बाढ़ की राह को मोड़ कर नहरों के रूप में परिवर्तित कर दिया जाए, तो वही

बाढ़ का पानी उत्पादक बन सकता है। यही दशा अपराधी बालकों की हैं। उनकी अतिरिक्त ऊर्जा का सदुपयोग करने की आवश्यकता है। ऐसे बालक अधिक प्रतिभाशाली होते हैं। जिस परिवार में पूजा-अर्चना, सत्संग और अध्यात्म से परिपूर्ण वातावरण होगा, उस परिवार के बालक विशेष रूप से सेवाभावी, विनम्र, आज्ञाकारी और परोपकारी बनते हैं, क्योंकि उन्हें पारिवारिक परिवेश में ये बोध सुगम होता है। पौधशाला का संचालन, स्वच्छता के प्रति जागरूकता और अनुशासित जीवन यापन करने का अवसर बालकों को मिलना आवश्यक। अत: परिवार का वातावरण व पर्यावरण अनुकरणीय होना चाहिए।

जो बात जीभ से कही जाती है, उसका प्रभाव कम पड़ता है; जो सीख जीवन में करके दी जाती है उसका प्रभाव ज्यादा होता है। अच्छी बाते केवल चर्चा का विषय नहीं, वो आचरण का विषय जरूर बने। आप चिल्लाओगे तो बच्चे भी चिल्लाना सीख जाएँगे। अपने बच्चों को केवल जीविका निर्वहन की शिक्षा मत देना। अच्छा जीवन जीने की शिक्षा भी देना।

आत्म विश्वास निर्माण

बालकों को खेलकूद में प्रवृत्त करने के लिए अवसर प्रदान करना चाहिए। इससे बालक अनुशासित बनने के साथ ही आत्मविश्वास, निर्णय क्षमता, कार्य के प्रति समर्पण भाव से मजबूत होते हैं। बालकों की विशेष उपलब्धियों पर उन्हें प्रशंसित भी करना चाहिए। पर्व और त्योहारों के आयोजन में बालकों को भागीदार बनाया जाए; ताकि बालकों में सुसंस्कारों का संचार हो और वे हमारी सांस्कृतिक विरासत के प्रति आस्थावान बन सकें।

''आपके बच्चों के पास अच्छी बुद्धि है। बस इस बात से संतोष मत कर लेना। उसे बुद्धि के साथ अच्छे संस्कारों से सिंचित कीजिए। बच्चों को सिखाओ नहीं, करके दिखाओ। इससे वे जल्दी सीख जाते हैं। बच्चे वो नहीं करते, जो आप करते हैं। चाह कर के भी आप अपने पैर बच्चों से नहीं छुआ सकते। इसके लिए पहले आप स्वयं को अपने माता-पिता के पैर प्रतिदिन छूने होंगे। जो बात जीभ से कही जाती है, उसका प्रभाव कम पड़ता है; जो सीख जीवन में करके दी जाती है उसका प्रभाव ज्यादा होता है। अच्छी बातें केवल चर्चा का विषय नहीं, वो आचरण का विषय जरूर बने। आप चिल्लाओगे तो बच्चे भी चिल्लाना सीख जाएँगे। अपने बच्चों को केवल जीविका निर्वहन की शिक्षा मत देना। अच्छा जीवन जीने की शिक्षा भी देना। एक श्रेष्ठ बालक का निर्माण मंदिर बनाने जैसा है।''

स्वाध्याय

''बालक स्वाध्याय के प्रति रुचिशील हो। मधुर बोलना, मन में उचित विचार करना, सबसे सद्व्यवहार, परिश्रम में उत्साह, स्वच्छता, सादगी, व्यसनों से मुक्ति, शिष्टाचार आदि गुणों का बीजारोपण माता-पिता के उचित संरक्षण में संभव हैं। पारिवारिक परिवेश में ही बालक के चरित्र का निर्माण संभव है। शरीर और मन बलवान बनते हैं। बुद्धि बढ़ती हैं और बालक आत्म निर्भर बनता है'' -स्वामी विवेकानंद

बालक की प्रथम पाठशाला परिवार है इस आशय का एक विशिष्ट उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है। बेटा तुम्हारा इंटरव्यू लेटर आया है। माँ ने लिफाफा हाथ में थमाते हुए कहा। यह मेरा सातवाँ इंटरव्यू था। मैं जल्दी से तैयार होकर नियत समय 9.00 बजे यथा स्थान पहुँच

गया। एक भवन में इंटरव्यू के लिए बनाए गए ऑफिस का दरवाजा खुला ही पड़ा था। मैनें बंद किया और भीतर गया। सामने वाले कमरे में जाने से पहले ही मुझे माँ की बात याद आ गई। बेटा! भीतर जाने से पहल पाँव झाड़ लिया करो। पायदान थोड़ा आगे खिसका हुआ था। मैंने सही जगह पर रखा। पैर पौंछे और भीतर गया। एक स्वागतकर्ता बैठी हुई थी। मैंने उसे अपना इंटरव्यू-लेटर दिखाया, तो उसने सामने रखे हुए सोफे पर बैठकर इंतजार करने के लिए कहा। मैं सौफे पर बैठ गया। उस पर रखे हुए तीन कुशन अस्त व्यस्त पड़े हुए थे। घर में मिले संस्कार के अनुसार उन्हें ठीक किया। वहीं कमरे की खिड़की के कुछ गमलों में पौधे लगे हुए थे। एक गमला कुछ टेड़ा-मेढ़ा पड़ा था जो गिर भी सकता था। माँ की व्यवस्थित रहने की आदत मुझे वहाँ भी याद आ गई। मैं उठा और उस गमले को ठीक किया।

जबसे तुम इस भवन में आए तबसे तुम्हारा इंटरव्यू चल रहा है। यदि तुम दरवाजा बंद नहीं करते, तो तुम्हारे बीस नंबर कम हो जाते। यदि तुम पायदान ठीक नहीं रखते और बिना पाँव पौछे ही आ जाते, तो बीस नंबर कम हो जाते। इसी तरह जब तुम सोफे पर बैठकर उस पर रखे कुशन को व्यवस्थित किया उसके भी बीस नंबर थे और गमले को जो तुमने ठीक किया वह भी तुम्हारे साक्षात्कार का हिस्सा था।

तभी स्वागतकर्ता ने सीढ़ियों से ऊपर जाने का संकेत किया और कहा तीन नंबर वाले कमरे में आपका इंटरव्यू है। मैं सीढ़ियाँ चढ़ने लगा और देखा कि दिन में भी दोनों लाइटें जल रही हैं। ऊपर चढ़कर मैनें दोनों लाइटें बंद कर दीं और तीन नंबर वाले कमरे में पहुँच गया। वहाँ दो लोग बैठे थे। उन्होंने मुझे सामने रखी कुर्सी पर बैठने का इशारा किया और मुझसे पूछा '' तो आप कब ज्वॉइन कर रहे है ?'' मुझे आश्चर्य हुआ तो मैनें कहा सर! मैं कुछ समझा नहीं। इंटरव्यू तो आपने लिया ही नहीं। इसमें समझने की क्या बात है?'' हम पूछ रहे है कि आप कब ज्वॉइन करेंगे ? सर! वह तो आप जब कहेंगे तब मैं ज्वॉइन कर लूँगा लेकिन आपने मेरा इंटरव्यू कब लिया ? वे दोनों सज्जन हँसने लगे, उन्होंने बताया '' जबसे तुम इस भवन में आए तबसे तुम्हारा इंटरव्यू चल रहा है। यदि तुम दरवाजा बंद नहीं करते, तो तुम्हारे बीस नंबर कम हो जाते। यदि तुम पायदान ठीक नहीं रखते और बिना पाँव पौछे ही आ जाते, तो बीस नंबर कम हो जाते। इसी तरह जब तुम सोफे पर बैठकर उस पर रखे कुशन को व्यवस्थित किया उसके भी बीस नंबर थे और गमले को जो तुमने ठीक किया वह भी तुम्हारे साक्षात्कार का हिस्सा था। अंतिम प्रश्न के रूप में सीढ़ियों की दोनों लाइटें जला कर छोड़ी गई थीं, जो तुमने बंद की थी। तब निश्चय हो गया कि तुम हर काम को व्यवस्थित करते हो और इस जॉब के लिए सर्वश्रेष्ठ उम्मीदवार हो। बाहर स्वागतकर्ता के पास जाओ और अपना नियुक्ति पत्र ले लो और कल से काम पर लग जाओ।

मुझे रह रहकर माँ और पापा की छोटी-छोटी सीखें, जो उस समय बहुत बुरी लगती थी आज याद आ रहीं थीं। मैनें माँ-बाप के पाँव छूकर अपने इंटरव्यू का पूरा विवरण सुनाया, तो वे बहुत प्रसन्न हुए। इस प्रकार परिवार ही मेरी प्रथम पाठशाला थी।

लेखक राजस्थान के पूर्व जिला शिक्षा अधिकारी हैं।

छोटी-छोटी चीजों की उपेक्षा करना समझदारी की बात नहीं। इस प्रकार की असंख्य वस्तुएँ और स्थितियाँ होती हैं जिनकी उपेक्षा करके हम भारी संकट में पड़ सकते हैं। कोई भी वस्तु अल्प मात्रा में हो या अत्यंत लघु आकार अथवा कम दाम की हो उसकी उपयोगिता ही उसे महत्त्वपूर्ण व प्रशंसनीय बनाने में सक्षम होती है। यही बात हमारे जीवन पर भी लागू होती है। यदि हमारे व्यवहार में अपेक्षित जीवनोपयोगी छोटी-छोटी बातों का समावेश नहीं होगा तो न, तो हमारा व्यक्तित्व ही प्रभावशाली हो सकेगा और न ही हम समाज में प्रशंसा व प्रेम पाने के अधिकारी हो सकेंगे।

सीता राम गुप्ता

बड़ा बनने के लिए अनिवार्य है उपयोगिता व सद्गुणों का विकास

कविवर रहीम का एक दोहा है:

धनि रहीम जल पंक को,
लघु जिय पियत अघाय,
उदधि बड़ाई कौन है,
जगत् पियासो जाय।।

रहीम कहते हैं कि कीचड़ के ऊपर ठहरा हुआ या तैरता हुआ पानी धन्य है जिसे पीकर छोटे जीव अर्थात् कीड़े-मकौड़े तृप्त होकर प्रसन्न हो जाते हैं लेकिन समुद्र की विशाल जलराशि का क्या महत्त्व जहाँ से सारा संसार प्यासा ही लौट जाता है। समुद्र के किनारे सैर करने जाना हो अथवा समुद्री यात्रा पर निकलना हो पीने का साफपानी साथ लेकर जाना पड़ता है। समुद्र में पानी की कमी नहीं लेकिन पीने योग्य न होने के कारण वह बेकार है। बड़ी होने पर भी बेकार चीज कभी भी प्रशंसा के योग्य नहीं होती। कहने का तात्पर्य यही है कि जो वस्तु किसी के काम आए चाहे वह कम मात्रा में ही क्यों न हो महत्त्वपूर्ण होती है और जो वस्तु किसी के कुछ काम ही न आए वह अधिक मात्रा में उपलब्ध होने पर भी महत्त्वहीन अथवा बेकार होती है। महत्त्व आकार अथवा विस्तार का नहीं उपयोगिता का होता है। कबीर भी सीधे सरल शब्दों में यही बात कहते हैं:

बड़ा हुआ तो क्या हुआ,
जैसे पेड़ खजूर।
पंथी को छाया नहीं,
फल लागै अति दूर।।

जीवन के हर क्षेत्र में ये बात लागू होती है। पैसे को ही लीजिए। कई लोगों के पास बहुत पैसा होता है, लेकिन कइयों के पास बहुत कम पैसा होता है या बिल्कुल ही नहीं होता। जो लोग अपने पास कम पैसा अथवा न्यून साधन होने पर भी दूसरों की मदद करने को तत्पर रहते हैं, वे सचमुच धन्य और प्रशंसा के पात्र हैं जबकि जो लोग समर्थ होते हुए भी किसी के काम नहीं आते या आ सकते उनकी कैसी बड़ाई? वे प्रशंसा नहीं, निंदा करने के लायक होते हैं। वस्तुओं का महत्त्व उनकी उपयोगिता से ही आँका जाता है और मनुष्यों का महत्त्व उनके स्वभाव अथवा गुणों से। सद्गुणों से संपन्न व्यक्ति ही सब जगह सम्मान पाता है। दुर्गुणों से युक्त व्यक्ति कभी सम्मान नहीं पा सकता। बिहारी ने भी कहा है:

लोग शारीरिक तौर पर भी सामान्य अथवा बहुत अधिक ताकतवर होते हैं। यदि किसी कमजोर अथवा असहाय की रक्षा की बात आती है तो वो व्यक्ति ही प्रशंसा का पात्र है जो संकट के समय किसी की रक्षा करने के लिए आगे आए। व्यक्ति ताकतवर होते हुए भी यदि किसी कमजोर व्यक्ति की रक्षा करने के लिए आगे नहीं आता तो उसकी ताकत का कोई सकारात्मक उपयोग न होने के कारण वह निरर्थक है।

अति अगाधु अति औथरौ, नदी, कूप, सरु बाइ,
सो ताकौ सागरु जहाँ जाकी प्यास बुझाइ।

बिहारी जलस्रोतों की विशेषताओं का वर्णन करते हुए कहते हैं कि नदी, कूप, सरोवर अथवा बावड़ी ये सभी गहरे भी हो सकते हैं और उथले अर्थात् कम पानी वाले भी लेकिन एक प्यासे व्यक्ति के लिए वही जलस्रोत समुद्र के समान अर्थात् विशाल है जहाँ उसकी प्यास बुझ जाए। जो जलस्रोत प्यास बुझाने में ही सक्षम न हो उसका कोई महत्त्व नहीं चाहे वह कितना ही विशाल क्यों न हो? इस दोहे को भी अनेक संदर्भों में देखा जा सकता है। लोग शारीरिक तौर पर भी सामान्य अथवा बहुत अधिक ताकतवर होते हैं। यदि किसी कमजोर अथवा असहाय की रक्षा की बात आती है तो वो व्यक्ति ही प्रशंसा का पात्र है जो संकट के समय किसी की रक्षा करने के लिए आगे आए। व्यक्ति ताकतवर होते हुए भी यदि किसी कमजोर व्यक्ति की रक्षा करने के लिए आगे नहीं आता तो उसकी ताकत का कोई सकारात्मक उपयोग न होने के कारण वह निरर्थक है।

इसी प्रकार से कई चीजें महंगी होती हैं तथा कई चीजें सस्ती होती हैं। सोने और लोहे को ही लीजिए। प्रश्न उठता है कि इन दोनों में से कौन-सी चीज महंगी है और कौन सी चीज सस्ती है? स्वाभाविक है सोना महंगा होता है और लोहा सस्ता होता है लेकिन लोहे की उपयोगिता के समक्ष सोना कुछ भी महत्त्व नहीं रखता। कुछ धनी महिलाएँ कानों में भारी-भारी सोने के आभूषण पहनती हैं जिससे उनके कानों के छिद्र बड़े होकर भद्दे लगने लगते हैं। कई बार ये आभूषण कानों को काट ही डालते हैं। तभी कहा जाता है कि वो सोना अथवा स्वर्ण आभूषण किस काम के जो कानों को ही काट डालें? आभूषणों के लालच में चोर-डाकू लोगों की हत्या तक कर देते हैं। पैसा भी प्राय: झगड़े की जड़ अथवा संकट का कारण बनता है। एक सामान्य व्यक्ति चैन की नींद सोता है, जबकि धनवान के लिए यह असंभव सा ही है। फिर भी यदि हम स्वर्ण अथवा धन-दौलत को बहुत अधिक महत्त्व देते हैं तो ये हमारी अज्ञानता ही है। यही हमारे दुखों का कारण है। जिस दिन हम सही चीजों को महत्त्व देना सीख लेंगे हमारी बहुत सी

समस्याएँ स्वत: समाप्त हो जाएँगी।

हाथी के दाँत खाने के और दिखाने के और यह एक प्रसिद्ध लोकोक्ति है। इसका भावार्थ है व्यक्ति की कथनी और करनी में अंतर होना, लेकिन हम हाथीदाँत की उपयोगिता पर चर्चा करेंगे। यद्यपि हाथी के बाहर दिखलाई देने वाले दांत बहुत सुंदर होते हैं लेकिन हाथी उनसे खाना नहीं खा सकता। हाथी को जीवित रहने के लिए भोजन अनिवार्य है और भोजन को चबाने के लिए उसे मुंह के अंदर के दांतों की जरूरत होती है, न कि बाहरी दाँतों की। ये बाहरी दाँत इतने सुंदर और कीमती होते हैं कि कई बार इनके लिए हाथी को अपनी जान तक गंवानी पड जाती है। हाथीदाँत दुर्लभ भी होता है, अत: हाथीदाँत की तस्करी करने वाले लोग इसके ऊँचे दामों पर बिकने के कारण जंगल में हाथियों को मारकर इसे प्राप्त करने से भी संकोच नहीं करते। ऐसे में हाथीदाँत के कीमती और सुंदर होने का क्या फायदा? तभी सरकार को हाथियों की जीवन-रक्षा के लिए हाथीदाँत के क्रय-विक्रय और इससे बनी वस्तुओं के इस्तेमाल पर प्रतिबंध लगाना पड़ा। इसी संदर्भ में रहीम का एक अन्य दोहा भी याद आ रहा है:

रहिमन देखि बडेन को लघु न दीजिए डारि,
जहाँ काम आवै सुई कहा करै तरवारि।

रहीम कहते हैं कि बड़ी वस्तु मिल जाने पर छोटी वस्तु को फेंक देना ठीक नहीं। हर वस्तु का अपना महत्त्व और विशिष्ट उपयोगिता होती है। तलवार भले ही बड़ी होती है, लेकिन वह सुई का कार्य नहीं कर सकती। कपड़ों पर बटन लगाने के लिए सुई के अतिरिक्त अन्य किसी चीज का इस्तेमाल नहीं किया जा सकता अत: छोटी-छोटी चीजों की उपेक्षा करना समझदारी की बात नहीं। इस प्रकार की असंख्य वस्तुएँ और स्थितियाँ होती हैं जिनकी उपेक्षा करके हम भारी संकट में पड़ सकते हैं। कहने का तात्पर्य यही है कि कोई भी वस्तु अल्प मात्रा में हो या अत्यंत लघु आकार अथवा कम दाम की हो उसकी उपयोगिता ही उसे महत्त्वपूर्ण व प्रशंसनीय बनाने में सक्षम होती है। यही बात हमारे जीवन पर भी लागू होती है। यदि हमारे व्यवहार में अपेक्षित जीवनोपयोगी छोटी-छोटी बातों का समावेश नहीं होगा तो न, तो हमारा व्यक्तित्व ही प्रभावशाली हो सकेगा और न ही हम समाज में प्रशंसा व प्रेम पाने के अधिकारी हो सकेंगें।

पैसा भी प्रायः झगड़े की जड़ अथवा संकट का कारण बनता है। एक सामान्य व्यक्ति चैन की नींद सोता है, जबकि धनवान के लिए यह असंभव सा ही है। फिर भी यदि हम स्वर्ण अथवा धन-दौलत को बहुत अधिक महत्त्व देते हैं तो ये हमारी अज्ञानता ही है। यही हमारे दुखों का कारण है। जिस दिन हम सही चीजों को महत्त्व देना सीख लेंगे हमारी बहुत सी समस्याएँ स्वतः समाप्त हो जाएँगी।

लेखक मनोवैज्ञानिक विषय के समर्थ लेखक हैं।

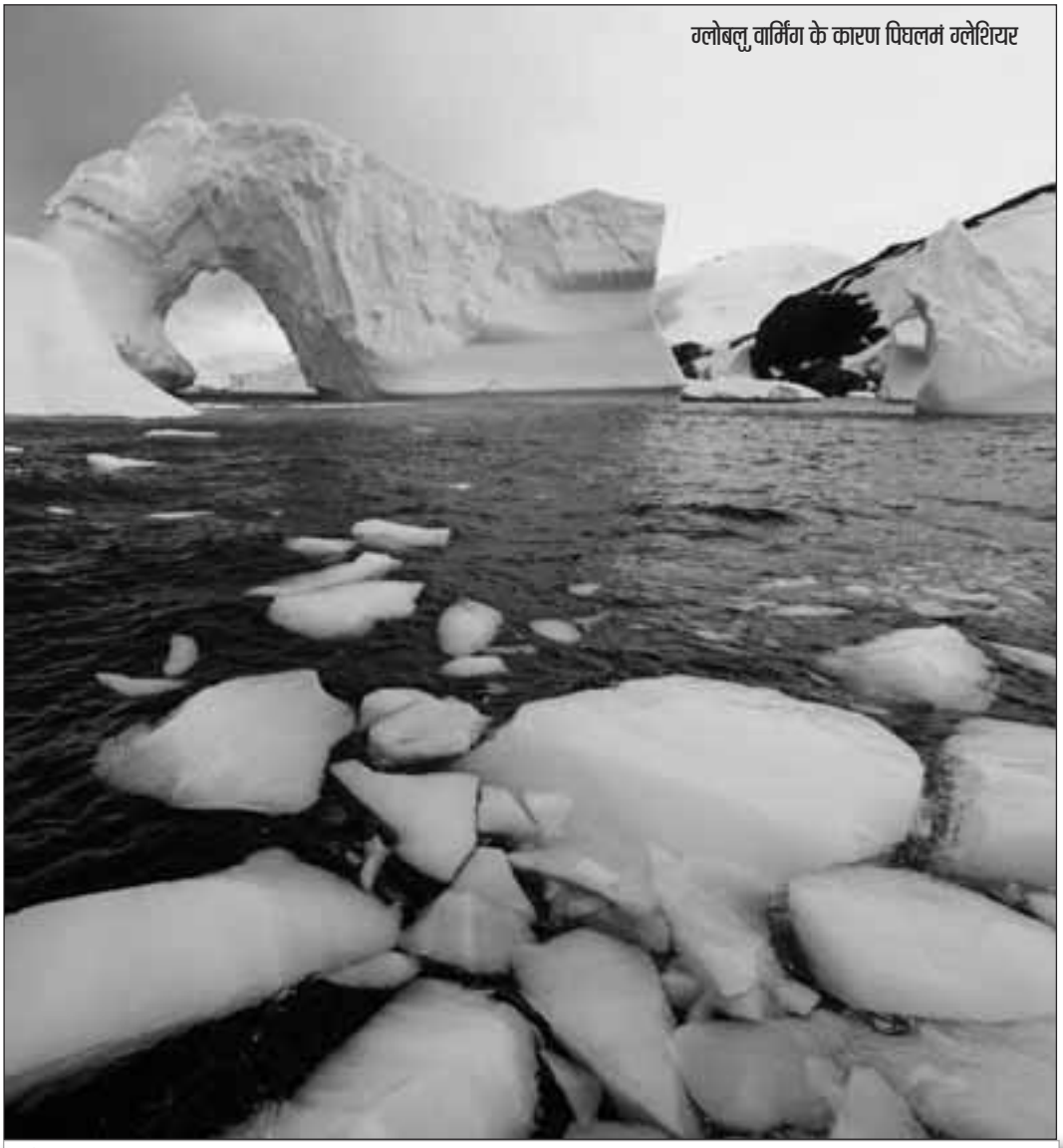

ग्लोबलू वार्मिंग के कारण पिघलमं ग्लेशियर

ग्लोबल वार्मिंग के कारण वैज्ञानिको के मस्तक पर गहराती चिंता की रेखाएँ मानवता का भविष्य बखान रही हैं। वास्तव में आधुनिक सभ्यता ने प्रगति का जो पथ चुना था उसमें यह सब होना भी था। स्मरणीय है कि महान् वैज्ञानिक स्टीफेन हाकिग ने कहा था- ''अपनी लालच और मूर्खता के चलते हम स्वयं को भयंकर विनाश की ओर अग्रसर कर रहे हैं।'' यही नहीं, नोबेल पुरस्कार विजेता महान साहित्यकार ऑक्टेवियो पाज ने भी लिखा था कि ''प्रकृति के दोहन के हमारे नादान प्रयत्न अब सभ्यता की आत्मघाती दौड़ में परिवर्तित हो चुके हैं।''

डॉ. ओम प्रभात अग्रवाल

एक प्रलय की प्रतीक्षा

पुराणों में एक संकल्पना है प्रलय की, जब समस्त पृथ्वी जलमय हो जाएगी एवं जलचर, थलचर, नभचर तथा विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों का संपूर्ण विनाश हो जाएगा। शेष रहेगा तो केवल एक छोटा सा भूखंड और उस पर खड़ा वट वृक्ष (अक्षय वट)। जैव विविधता के महाविनाश और समुद्र के गर्भ में पृथ्वी के समा जाने की ऐसी ही संकल्पनाएँ बाइबिल और यहूदी धर्म ग्रंथों में भी हैं। अनेक धर्मों में एक-सी ऐसी संकल्पना का आधार कहीं कुछ ऐसी वास्तविकता तो नहीं जो सचमुच में कभी पृथ्वी पर घटित हुई हो और वही अंतत: इन संकल्पनाओं का आधार बन गई हो! आइये देखते हैं।

लगभग 25 करोड़ वर्ष पहले पृथ्वी ग्रह पर ऐसा ही कुछ घटित तो अवश्य हुआ था और उसे वैज्ञानिकों ने ''ग्रेट डाइंग'' (अभूतपूर्व मृत्यु पर्व) कह कर पुकारा है।

अभी कुछ समय पूर्व प्रख्यात शोध जर्नल ''साइंस'' में प्रकाशित एक शोध-पत्र में जस्टिस पेन एवं कर्टिस डायट्श ने 25 करोड़ वर्ष पूर्व के इस मृत्यु पर्व के कारणों की व्याख्या की है। उनके अनुसार उस समय धरती पर ज्वालामुखियों का जाल बिछा हुआ था। इन अग्निमुखों में कतिपय कारणों से एक साथ विस्फोट हुआ और अपरिमित मात्रा में ऊर्जा उत्सर्जित हुई। इस ऊर्जा से धरती तपने लगी और समुद्रों तक के जल के ताप में 11 डिग्री तक की वृद्धि हो गई। इस नारकीय ताप के कारण 70 प्रतिशत थलचर काल के ग्रास बन गए तथा वनस्पतियाँ तो लगभग पूरी तरह विनष्ट हो -गईं। अधिकांश नभचर भी जीवन से हाथ धो बैठे। ध्रुवों की बर्फ पिघल जाने के कारण समुद्रों में बाढ़ आ गई और पृथ्वी के अधिकांश भाग जलमग्न हो गए। समुद्र जल का ताप अत्यधिक बढ़ जाने के कारण उसमें से घुलित ऑक्सीजन भाग खड़ी हुई। साथ ही इस तप्त जल में कार्बन डाइऑक्साइड गैस (जो ज्वालामुखियों के विस्फोट में अकल्पनीय मात्रा में उत्सर्जित हुई थी) को

अवशोषित करने की क्षमता 12 गुणा तक बढ़ गई जिसके कारण यह जल अत्यधिक अम्लीय हो गया। ये दोनों ही कारण (ऑक्सीजन का निष्कासन तथा अत्यधिक कार्बन गैस का समुद्र जल में घुलना) 90 प्रतिशत जलचरों की मृत्यु का कारण बन गए। स्पष्ट है कि स्थिति लगभग वैसी ही बन गई थी जो पौराणिक प्रलय में वर्णित है।

यह तो हुई अतीत की घटना। चिंता की बात है कि उपर्युक्त वैज्ञानिकों, जस्टिस पेन एवं डायट्श कर्टिश ने भविष्यवाणी की है कि शीघ्र ही (30 से 80 वर्षों में) हमें एक मिलते-जुलते से प्रलय का सामना करना पड़ सकता है। संकेत हैं भी ऐसे ही। उन संकेतों एवं उनके कारकों की चर्चा यहाँ पर कर लेना निश्चय ही समीचीन होगा।

बढ़ते ताप का प्रभाव स्पष्ट दिखने लगा है। ध्रुवों की बर्फ पिघलने लग गई है और उसके फलस्वरूप समुद्रों का जल स्तर बढ़ने लगा है। अनुमानित है कि यह स्तर 2100 तक 2 मीटर तक बढ़ जाएगा। वर्ष 1900 से अब तक भी वैश्विक औसत स्तर 16-21 से.मी. तो बढ़ भी चुका है। इसके कारण समुद्र अपने किनारे की भूमि लीलने लग गए हैं। पूर्वी भारत के सुंदरबन डेल्टा के अनेक द्वीपों में से दो तो पूर्ण रूप से समुद्र के गर्भ में जा चुके हैं जबकि विशाल घोरमारा द्वीप का आधा हिस्सा जलमग्न हो चुका है।

दृष्ट्व्य है कि 25 करोड़ वर्ष पूर्व की प्रलयंकारी घटना में मुख्य कारक था अत्यधिक ताप और आज हम पुन: अभूतपूर्व 'ग्लोबल वार्मिंग' के प्रभावों की व्याख्या में सिर धुन रहे हैं। वर्ष 1800 (आधार वर्ष) की अपेक्षा धरा का ताप लगभग 0.8^0 बढ़ चुका है (वर्तमान ताप औसत = लगभग 14^0) और वैज्ञानिक प्रयत्नशील हैं कि वर्ष 2030 तक कुल वृद्धि 1.5 से अधिक न हो और तत्पश्चात् वर्ष 2100 तक वह लगभग अपरिवर्तित रहे; यद्यपि यह संभव नहीं लगता।

इस बढ़ते ताप का प्रभाव स्पष्ट दिखने लगा है। ध्रुवों की बर्फ पिघलने लग गई है और उसके फलस्वरूप समुद्रों का जल स्तर बढ़ने लगा है। अनुमानित है कि यह स्तर 2100 तक 2 मीटर तक बढ़ जाएगा। वर्ष 1900 से अब तक भी वैश्विक औसत स्तर 16-21 से.मी. तो बढ़ भी चुका है। इसके कारण समुद्र अपने किनारे की भूमि लीलने लग गए हैं। पूर्वी भारत के सुंदरबन डेल्टा के अनेक द्वीपों में से दो तो पूर्ण रूप से समुद्र के गर्भ में जा चुके हैं जबकि विशाल घोरमारा द्वीप का आधा हिस्सा जलमग्न हो चुका है तथा शेष भी धीरे-धीरे जलमग्न होता जा रहा है। यहाँ के अधिकतर निवासी अब इसे छोड़कर अन्य स्थानों पर रहने को विवश हैं। इसी प्रकार केरल में कोल्लम जिले का मुनरो थुरूथू द्वीप भी जलसमाधि की ओर अग्रसर है। मालदीव जैसा छोटा-सा द्वीपीय देश हर क्षण प्रभु से अपने अस्तित्व की भिक्षा माँग रहा है। इंडोनेशिया की राजधानी जकार्ता के 2050 तक 95 प्रतिशत तक समुद्र के अंदर चले जाने का अनुमान है और इसीलिए अगले दस वर्षों में एक नई राजधानी की योजना बन रही है। सच तो यह है कि हैती के बराबर की भूमि अभी तक समुद्र लील चुके हैं।

पिछले 58 वर्षों में घुलित ऑक्सीजन की मात्रा समुद्रों में 2 प्रतिशत तक कम हुई है और गरमाते समुद्रों में अधिक से अधिक कार्बन डाइऑक्साइड के घुलने से अम्लता बढ़ती जा रही है। यह अम्लता (और बढ़ता समुद्री प्रदूषण भी) मूँगों के लिए जानलेवा सिद्ध हो रहा है जिसके फलस्वरूप मूँगा चट्टानें घटती जा रही हैं। क्वींसलैंड विश्वविद्यालय

की एक शोध के अनुसार नई शताब्दी के अवतरण तक ऑस्ट्रेलिया, इंडोनेशिया, मलयेशिया आदि की ये चट्टानें पूरी तरह समाप्त हो जाएँगी और तब बार-बार सुनामी के आक्रमण के प्रति धरती पूरी तरह अरक्षित हो जाएगी क्योंकि ये ही चट्टानें तो सुनामी के वेग को रोकती हैं।

समुद्रों के संबंध में कुछ नए तथ्य भी प्रकाश में आए हैं। समुद्रों की तलहटी पर स्थान-स्थान पर सक्रिय ज्वालामुखी हैं, जो अन्य पदार्थों के साथ-साथ कतिपय हाइड्रोकार्बन गैसें, हैलो कार्बन गैसें, कार्बन डाइऑक्साइड आदि अपने अग्निमुखों से उगलते रहते हैं। ये गैसें जल के अणुओं के साथ संयुक्त हो कर अंतत: बर्फ की कीचड़ (Ice Slurry) के भंडार के रूप में समुद्र तल पर स्थान-स्थान पर एकत्रित हैं। ये भंडार, स्पष्ट है समुद्र जल के बढ़ते ताप के प्रति संवेदनशील होंगे और पर्याप्त ताप वृद्धि के पश्चात् पिघल कर गैसों को निर्मुक्त कर देगें। ये सभी ग्रीनहाउस गैसें हैं जो ग्लोबल वार्मिंग को और तीव्रता से बढ़ा देंगी। प्रमाण हैं कि पिछले वर्षों में समुद्र की सतह से इन गैसों के उत्सर्जन की मात्रा में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। ज्ञातव्य है कि ग्रीनहाउस गैसें वे गैसें हैं जो सूर्य की गर्मी को पृथ्वी तक आने तो देती हैं परंतु इसके अधिकांश को रात में अंतरिक्ष में वापस लौटने न दे कर पृथ्वी के पास के वायुमंडल, ट्रोपोस्फियर में (धरती से 14 किलोमीटर ऊपर तक) रोक लेती हैं।

ग्लोबल वार्मिंग के बढ़ते कदमों के लिए मुख्यरूप से कार्बनडाइऑक्साइड गैस उत्तरदायी है। यह प्रमुख ग्रीनहाउस गैस है ट्रोपोस्फियर में जिसकी बढ़ती सांद्रता से धरती का ताप बढ़ता जाता है। सन् 1700 में इस क्षेत्र में इस गैस की सांद्रता 280 ppm थी, जो अब बढ़कर 415 तक पहुँच चुकी है। इसी कारण धरती का ताप भी बढ़ा है जिसकी चर्चा की जा चुकी है। इस पर भी हम अपनी सुविधा भोगी जीवन शैली के चलते आज 42 करोड़ टन गैस प्रतिवर्ष वातावरण में झोंक रहे हैं। वातावरण में कार्बन गैस की सांद्रता नियंत्रित रह सकती थी, यदि हम धरती पर जंगलों को सुरक्षित रखते क्योंकि तब कार्बन गैस का अधिकांश प्राकाशिक संश्लेषण (Photosynthesis) क्रिया द्वारा वनस्पतियाँ अपने उपयोग में ले लेती। परंतु आज तो भयंकर गति से निर्वनीकरण हो रहा है। वर्ष1990-2015 की अवधि में ही 1290 लाख हेक्टेयर वन उजाड़ दिए गए। ऐसी दशा में वनों की वातावरण की कार्बन गैस सांद्रता को नियंत्रित करने की क्षमता निम्न से निम्नतर होती जा रही है तो क्या आश्चर्य!

ग्लोबल वार्मिंग के बढ़ते कदमों के लिए मुख्यरूप से कार्बनडाइऑक्साइड गैस उत्तरदायी है। यह प्रमुख ग्रीनहाउस गैस है ट्रोपोस्फियर में जिसकी बढ़ती सांद्रता से धरती का ताप बढ़ता जाता है। सन् 1700 में इस क्षेत्र में इस गैस की सांद्रता 280 पीपीएम थी, जो अब बढ़कर 415 तक पहुँच चुकी है। इसी कारण धरती का ताप भी बढ़ा है इस पर भी हम अपनी सुविधा भोगी जीवन शैली के चलते आज 42 करोड़ टन गैस प्रतिवर्ष वातावरण में झोंक रहे हैं।

यही नहीं, हमारी जीवनशैली ऐसी है कि अनेक हाइड्रोकार्बन ग्रीन हाउस गैसों का बड़े स्तर पर उत्सर्जन हो रहा है। 1980 से अब तक इस उत्सर्जन में 100 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। स्पष्टता ये गैसें भी धरती का ताप बढ़ाएँगी ही।

रसायनों पर अति निर्भरशील आधुनिक सभ्यता औद्योगिक सक्रियता के फलस्वरूप ऐसे भी रसायनों का सृजन कर रही है जो ट्रोपोस्फियर से भी ऊँचे,

स्ट्रेटोस्फियर (धरती से 14-15 किलोमीटर ऊपर) तक पहुँच कर यहां अत्यंत विरल सांद्रता (~ 8.0पीपीएम) में उपस्थित ओजोन गैस के अणुओं से अभिक्रिया कर उन्हें नष्ट-भ्रष्ट कर देते हैं। स्ट्रेटोस्फियर की ओजोन गैस सूर्य की अतिशय ऊर्जावान पराबैंगनी किरणों को अवशोषित कर उन्हें पृथ्वी तक पहुँचने ही नहीं देती जिससे धरा का ताप नियंत्रित रहता है। इसी कारण ओजोन अणु को ओजोन छतरी नाम दिया गया है, परंतु इसके अणुओं के अधिकाधिक नष्ट होते जाने से यहाँ की ओजोन सतह की यह क्षमता घटती जा रही है और इस प्रभाव से भी धरती का ताप वृद्धि की ओर अग्रसर है। स्मरणीय है कि पृथ्वी पर आज भी 1500 के लगभग ज्वालामुखी सक्रिय हैं ही जो समय-समय पर भयानक ताप उत्सर्जित करते रहते हैं।

प्राकृतिक रूप से नाइट्रोजन के ऑक्साइडों (NOx) का उत्पादन, कृषि अपशिष्ट, मल-जल, नगरों के कूड़ा कचरे (मुख्यतः जैविक कचरा) आदि पर बैक्टीरिया के आक्रमण द्वारा उनके सड़ने पर होता है। इसीलिए गोबर की खाद आदि तैयार करने की प्रक्रिया में NOx बराबर बनती रहती है। विश्व भर में प्रतिवर्ष लगभग पचास करोड़ टन NOx इसी प्रकार उत्पादित होती है।

ताप वृद्धि का एक नया कारक कुछ समय से ही पर्यावरणविदों की दृष्टि में आया है। वह कारक है नाइट्रोजन की ऑक्साइड गैसें जिन्हें सम्मिलित रूप से NOx कहा जाता है। वस्तुत: यह तीन गैसों, नाइट्रस, नाइट्रिक तथा नाइट्रोजन डाइऑक्साइड गैसों का समूह है। ये तीनों ही गैसें स्ट्रटोस्फियर की ओजोन सतह के भ्रंश में सक्षम हैं और इसीलिए ग्लोबल वार्मिंग की एजेंट भी हैं। यद्यपि प्राकृतिक रूप से वायुमंडल में इन गैसों की मात्रा नगण्य-सी ही है और इसीलिए पर्यावरणविदों का ध्यान अभी तक उनकी ओर नहीं गया था, परंतु आधुनिकता के बढ़ते कदमों के कारण अब उनके वैश्विक उत्पादन की मात्रा में निरंतर वृद्धि हो रही है। केवल भारतवर्ष में ही वर्ष 1991 से 2001 तक के दशक में यह वृद्धि 52 प्रतिशत तथा दशक में 59 प्रतिशत मापी गई।

प्राकृतिक रूप से नाइट्रोजन के ऑक्साइडों (NOx) का उत्पादन, कृषि अपशिष्ट, मल-जल, नगरों के कूड़ा कचरे (मुख्यत: जैविक कचरा) आदि पर बैक्टीरिया के आक्रमण द्वारा उनके सड़ने पर होता है। इसीलिए गोबर की खाद आदि तैयार करने की प्रक्रिया में NOx बराबर बनती रहती है। विश्व भर में प्रतिवर्ष लगभग पचास करोड़ टन NOx इसी प्रकार उत्पादित होती है। स्वाभाविक है कि आधुनिक नागर सभ्यता की जीवनशैली के कारण प्रतिदिन कचरे का पहाड़ सृजित होता है और इसीलिए नगरों में NOx का बैक्टीरियाई उत्पादन भी गाँवों की अपेक्षा कहीं अधिक होता है। नगरों में ही कोयले, प्राकृतिक गैस, पेट्रोल आदि के अत्यधिक दहन के कारण भी NOx का उत्पादन कहीं अधिक होता है। स्पष्टत: इन जीवाष्म ईंधनों में नाइट्रोजन गैस प्राकृतिक रूप से कुछ मात्रा में उपस्थित होती है और वही दहन के फलस्वरूप NOx में परिवर्तित हो जाती है। NOx उत्पादन के अन्य स्रोतों में हम ताप बिजलीघर एवं गैस से चलने वाली भट्टियों, पटाखा, खाद, पेट्रो एवं इस्पात उद्योगों आदि की गणना कर सकते हैं।

कहना न होगा कि NOx की अति प्रदूषणकारी

प्रकृति भी मानवता के हितों को चोट ही पहुंचाती हैं। केवल NOx ही क्यों? ऐसे तो अनेक तत्त्व हैं जो वायुमंडल और जलस्रोतों को बुरी तरह प्रदूषित करने में लगे हुए हैं। यद्यपि उनकी विस्तृत विवेचना इस लेख का उदेद्श्य नहीं है। प्रदूषण का उल्लेख केवल इसलिए किया गया है कि यह, ग्लोबल वार्मिंग के साथ मिलकर विश्व की जैव विविधता के विनाश में सतत रत है। 1970 से 2006 के काल में ही रीढ़दार प्रजातियों की संख्या में 30 प्रतिशत की कमी आई है। पोलर बीयर और पेंगुइन जैसी बड़ी प्रजातियाँ भी लुप्त होने के कगार पर हैं। संयुक्त राष्ट्र की मई 2019 की रपट के अनुसार जीवों और वनस्पतियों की कुल 80 लाख प्रजातियों में से दस लाख के आगामी दस वर्षों में लुप्त हो जाने की आशंका सत्य सिद्ध हो सकती है। इसी वर्ष मार्च में 250 वैज्ञानिकों द्वारा संयुक्त राष्ट्र संघ की पर्यावरणीय समिति के अधिवेशन के अवसर पर नैरोबी में प्रस्तुत रपट के अनुसार वर्तमान में प्रदूषण के कारण 90 लाख मानवों की मृत्यु प्रतिवर्ष होती है और अनुमान है कि 2050 तक प्रदूषण मृत्यु का विश्व में शीर्ष कोटि का कारक बन जाएगा। यही नहीं, यदि 2050 अथवा 2100 तक धरा का औसत ताप 2^0 तक बढ़ गया तो कृषि की उपज में भी 40 प्रतिशत तक की कमी आ जाएगी।

संयुक्त राष्ट्र की मई 2019 की रपट के अनुसार जीवों और वनस्पतियों की कुल 80 लाख प्रजातियों में से दस लाख के आगामी दस वर्षों में लुप्त हो जाने की आशंका सत्य सिद्ध हो सकती है। इसी वर्ष मार्च में 250 वैज्ञानिकों द्वारा संयुक्त राष्ट्र की पर्यावरणीय समिति के अधिवेशन के अवसर पर नैरोबी में प्रस्तुत रपट के अनुसार वर्तमान में प्रदूषण के कारण 90 लाख मानवों की मृत्यु प्रतिवर्ष होती है।

अब भी कितना संदेह है कि एक और प्रलय से मिलती-जुलती घटना सर पर है? सच तो यह है कि वैज्ञानिकों के मस्तक पर -हराती चिंता की रेखाएँ मानवता का भविष्य बखान रही हैं। जून 2019 में प्रकाशित ऑस्ट्रेलिया के एक थिंक टैंक की रपट भी वर्ष 2050 तक ऐसा ही कुछ हो जाने की संभावना की पुष्टि करती है। वास्तव में आधुनिक सभ्यता ने प्रगति का जो पथ चुना था उसमें यह सब होना भी था। स्मरणीय है कि महान् वैज्ञानिक स्टीफेन हाकिंग ने कहा था- ''अपनी लालच और मूर्खता के चलते हम स्वयं को भयंकर विनाश की ओर अग्रसर कर रहे हैं।'' यही नहीं, नोबेल पुरस्कार विजेता महान साहित्यकार ऑक्टेवियो पाज ने भी लिखा था कि ''प्रकृति के दोहन के हमारे नादान प्रयत्न अब सभ्यता की आत्मघाती दौड़ में परिवर्तित हो चुके हैं।''

यह सब सत्य है। प्रकृति के पास हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सब कुछ है, परंतु हमारी लालच के आगे वह असमर्थ है। अभी भी समय है, हम चेतें और आवश्यकताओं को नियंत्रित करें; तो संभवत: आगामी प्रलय को रोक सकते हैं। परंतु क्या हम चेतना चाहते हैं ?

लेखक मदवि, रोहतक के रसायन विभाग के पूर्वअध्यक्ष हैं।

भारत में प्रदूषण की समस्या निरंतर बढ़ती जा रही है। प्राकृतिक पर्यावरण के नष्ट होने से न सिर्फ जल, वायु, पृथ्वी, प्रदूषित हो रही है बल्कि मौसम में भी भयावह परिवर्तन हो रहा है। कहीं भारत में अतिवृष्टि हो रही है, कहीं भारत में अतिवृष्टि के कारण बाढ़ आ रही है तो कहीं वर्षा न होने का कारण सूखा पड़ रहा है, कहीं असमय बर्फ पड़ रही है तो तूफान आ रहे हैं। जिससे जन-जीवन त्रस्त है और प्राकृतिक वातावरण तीव्रगति से प्रदूषित हो रहा है। अपना सुखद जीवन जीना है और स्वस्थ रहना है तो जल, वायु, पृथ्वी और ध्वनि प्रदूषण को कम करने के लिए व्यक्तिगत रूप से प्रयास करने होंगे तथा जनता को समझाना होगा।

डॉ. रामशरण गौड़

भारत में प्रदूषण संकट

भारत में प्रदूषण की समस्या निरंतर बढती जा रही है। जिसके कारण जनजीवन के लिए एक बहुत बड़ी समस्या आ रही है। हमारे चारों ओर हवा, पानी, भूमि का प्राकृतिक पर्यावरण है जो मानव, पशु-पक्षी, पेड़-पैधों सभी को संरक्षण प्रदान करता रहा है, परंतु आज विज्ञान के उदय के साथ प्रकृति के साथ मनुष्य ने ऐसी छेड़छाड़ की है कि मनुष्य, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे सभी पर इसका कुप्रभाव पड़ रहा है । बड़े-बड़े उद्योग लगाए जा रहे हैं।

अमर्यादित जनसंख्या के कारण गाँव कस्बों में, कस्बे शहरों में, शहर महानगरों में परिवर्तित हो रहे हैं, जंगल कटते जा रहे हैं, पेड़-पौधों को काटकर कंकरीट के जंगलों में परिवर्तित किया जा रहा है, पहाडों को काटा जा रहा है, पशु-पक्षियों की अनेक नस्लें समाप्त होती जा रही हैं, नदियों का पानी प्रदूषित हो रहा है जिसके कारण पीने के पानी की कमी होती जा रही हैं। प्राकृतिक पर्यावरण के नष्ट होने से न सिर्फ जल, वायु, पृथ्वी, प्रदूषित हो रही है बल्कि मौसम में भी भयावह परिवर्तन हो रहा है। कहीं भारत में अतिवृष्टि हो रही है, कहीं भारत में अतिवृष्टि के कारण बाढ़ आ रही है तो कहीं वर्षा न होने का कारण सूखा पड़ रहा है, कहीं असमय बर्फ पड़ रही है तो तूफान आ रहे हैं। जिससे जन-जीवन त्रस्त है और प्राकृतिक वातावरण तीव्रगति से प्रदूषित हो रहा है।

प्रकृति की भारतीय समझ

ऐसा नहीं है कि भारत के

ऋषि-मुनियों को विज्ञान का ज्ञान नहीं था, परंतु उन्होनें प्रकृति के उस महत्त्व को समझा जिसमें मनुष्य आनंद से रह सकता था। उन्होंने समुद्र, पर्वत, नदी, औषधीय पेड-पौधों सभी को ब्रह्म माना।

अत: समुद्रा गिरय सर्वे ,
अस्मात्यदंते सिंधव: सर्वरूपा:
अतश्च सर्वाऔषधयो रसश्च,
येनैष भुतेस्तिष्टवे ह्यन्तरामा। (मुण्डकोपनिषद्)

श्रीमद्भगवत में कहा गया है कि बहुपानी की वेगवाली नदियाँ तथा समुद्र श्रीकृष्ण के मुख से बहते हैं-

भारतीय समस्त सृष्टि को ब्रह्मस्वरूप मानकर नदी, पर्वतों, वृक्षों और पशु-पक्षियों का संरक्षण करते रहे और इनकी सुरक्षा के लिए ऋषि-मुनियों ने वंदना और पूजन का विधान भी बताया। क्योंकि वे जानते थे कि यदि हमने प्रकृति के उपादानों का संरक्षण नहीं किया तो पृथ्वी पर मनुष्य के लिए जीना दूभर हो जाएगा। जैसा कि आज भौतिक सभ्यता के उदय के साथ पृथ्वी पर प्रकृति का संतुलन बिगड़ गया है।

यथा नदियाँ बहुबोअंबुबेगा:
समुद्रमेंवभिमुखा द्रवंति । (12/28)

अत: भारतीय समस्त सृष्टि को ब्रह्मस्वरूप मानकर नदी, पर्वतों, वृक्षों और पशु-पक्षियों का संरक्षण करते रहे और इनकी सुरक्षा के लिए ऋषि-मुनियों ने वंदना और पूजन का विधान भी बताया। क्योंकि वे जानते थे कि यदि हमने प्रकृति के उपादानों का संरक्षण नहीं किया तो पृथ्वी पर मनुष्य के लिए जीना दूभर हो जाएगा। जैसा कि आज भौतिक सभ्यता के उदय के साथ पृथ्वी पर प्रकृति का संतुलन बिगड़ गया है। एक ओर जहाँ भारत में प्रदूषण बढ़ रहा है तो दूसरी ओर प्रकृति के असंतुलन बिगड़ने से कहीं पीने के लिए पानी नहीं हैं, जल, वायु, खाद्य-पदार्थ सभी प्रदूषित हैं। पैसे के लालच में लोग पहाड़ों को काटने में लगे हैं तो लगभग सभी पदार्थों में मिलावट की जा रही है जो जन-जीवन के लिए घातक हैं। खाद्य-पदार्थों सब्जी, फलों आदि में रसायन के प्रयोग और गंदे पानी में उगानें और उन्हें धोने से उनके प्रदूषित होने के कारण कैंसर जैसी खतरनाक घातक बीमारियों के प्रसार दिनोंदिन भारत में बढ़ता जा रहा है। हमारे पूर्वज यंत्र-मशीन आधारित भौतिकवादी और भोगवादी सभ्यता नाश करने वाली है, यह भली-भांति जानते थे कि महात्मा गांधी की 150वी जयंती मनायी जा रही है उन्होंने भारत को इस पाश्चात्य संस्कृति के बचने की चेतावनी दी थी और कहा था इस सभ्यता के कारण अँग्रेज प्रजा में सड़न ने घर कर लिया है। यह सभ्यता दूसरों का नाश करने वाली है। यह सभ्यता दूसरों का नाश करने वाली है तथा खुद नाशवान है (हिंद स्वराज-अध्याय-6) आज जब एक तरफ हिंसा, आतंकवाद दूसरी ओर पर्यावरण प्रदूषण से मानवता त्रस्त है तो मानवता को सुरक्षित रखने का एकमात्र विकल्प गांधी द्वारा दिखाया गया रास्ता ही है। (गांधी एक अध्ययन, डॉ. अर्जुन मिश्र पृ, 139)

जल

आज भारत में जल, वायु, पृथ्वी, ध्वनि प्रदूषण की समस्या निरंतर बढ़ रही है। जल हमारे जीवन का रक्षक है। भारतीय संस्कृति में जल को एक देवता

रूप में वर्णित किया गया है। जल का संबंध वरुण देवता से है। माना जाता है कि जल में वरुण देवता का वास है। प्राचीन समय से नदियों, तालाबों, पोखरों में मल विसर्जन की बात तो सोच ही नहीं सकते थे, यहाँ तक कि पानी में मल, मूत्र, थूक या अन्य दूषित पदार्थ रक्त, विष का विसर्जन न स्वंय ही करने देते थे तथा ऐसा करने से दूसरों को भी रोक देते थे।

नाप्सु मूत्रं पुरीषं वाष्टीवनं समुत्सृजेत ।
अमेध्य लिप्तमन्यद्धा लोहितं वा विषणिवा।
(मनुस्मृति , 4-56)

आज भारत की सभी नदियाँ प्रदूषित हो रही हैं। वे गंदे नाले में परिवर्तित हो गयी हैं। उनमें अनेक गंदे नालों, कारखानों का प्रदूषित अवशिष्ट जा रहा है। लोग नदियों में सब कुछ डालते हैं। धार्मिक आस्था के नाम पर घर के पूजा-पाठ की बची सामग्री, यज्ञ-भस्म, पुरानी धार्मिक पुस्तकें, देवताओं की मूर्तियाँ सभी नदियों में फैंक देते हैं । इनमें भारत के पढ़े-लिखे समाज के तथाकथित शिक्षित भी बढ़ी संख्या में सम्मिलित हैं जो इसके परिणाम के संबंध में बिलकुल भी नहीं सोचते।

आज भारत की सभी नदियाँ प्रदूषित हो रही हैं। वे गंदे नाले में परिवर्तित हो गयी हैं। उनमें अनेक गंदे नालों, कारखानों का प्रदूषित अवशिष्ट जा रहा है। लोग नदियों में सब कुछ डालते हैं। धार्मिक आस्था के नाम पर घर के पूजा-पाठ की बची सामग्री, यज्ञ-भस्म, पुरानी धार्मिक पुस्तकें, देवताओं की मूर्तियाँ सभी नदियों में फैंक देते हैं । इनमें भारत के पढ़े-लिखे समाज के तथाकथित शिक्षित भी बढ़ी संख्या में सम्मिलित हैं जो इसके परिणाम के संबंध में बिलकुल भी नहीं सोचते। सरकार ने पुलों से नदी में पोलोथीन में भरकर कुछ सामान नहीं फेंका जाए उनके किनारे जाली लगवा दी हैं। उस जाली को बच्चे काट देते हैं। भारत के सभ्य को जाने वाले लोग अपनी कारों में आते हैं तथा उस कटी जाली के पास बैठे बच्चों को दो-चार पैसे देकर उस जाली से पूजा की बची सामग्री, धार्मिक पुस्तकें नदी को प्रदूषित करने के लिए फिकवा देते हैं। समय के साथ हमारी धार्मिक कर्मकांड की परंपराओं में बदलाव आया है। पहले यज्ञ करने और धार्मिक प्रवचनों की परंपरा थी। बाद में कर्मकांड की परंपरा आयी जिसके आधार पर अनेक बुराइयाँ समाज में व्याप्त हैं।

नदियों में अवशिष्ट डालने की परंपरा तथा नदियों में अस्थि विसर्जन और शव के जलानें की लकड़ी की राख तथा शव भस्म की भस्म को नदियों में बहाने की परंपरा में बदलाव आना चाहिए। उस राख को अब खेतों में डालकर अन्नदेवता का वंदन करना चाहिए। इस संबंध में धार्मिक गुरुओं को आगे आना चाहिए। उन्हें भारतीय समाज को प्रेरित करना चाहिए।

गंगा को हम जीवनदायिनी माँ मानकर उसकी पूजा करते आ रहे हैं। हमारे पूर्वज शरीर के लिए आचमन के लिए ऐसे शुद्ध और पवित्र जल की कामना करते थे कि जिसके दर्शनमात्र से शुद्ध हो जाएँ। वे गंगा का नाम भजते ही शुद्ध और पुण्य का भागी होने का अनुभव करते थे।

गंगा गंगति यैर्नाम योजनानां शतैरपि ।
स्थिवरुच्चारितंहंति पापं जन्मत्रयर्जिजतम् ।
(विष्णु पुराण- अ.8)

वायु प्रदूषण

जल के बाद वायु ऐसी दैवीशक्ति है कि उसके बिना जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती।

उपनिषदों में कहा गया है कि वायु में दैवीशक्ति का वास है। यह प्राण बनकर शरीर में वास करती है जिस पर शरीर और मन की सभी क्रियायें आधारित हैं—

वायुहं वै प्राणौ भूत्वा शरीरमाविशता ।

प्रदूषण से बढ़ती बीमारियाँ

शुद्ध वायु से हमें औषधीय तत्त्व और ऑक्सीजन मिलती है जिससे हमारे शरीर का पोषण होता है तथा हम अनेक मानसिक और शारिरिक बीमारियों से बचते हैं। परंतु आज भारत की वायु प्रदूषण की स्थिति अत्यंत चिंताजनक हैं। अब वृक्षों को काटकर बहुमंजली इमारत खड़ी करने और बड़े-बड़े भवन बनाने की समाज में होड़ लगी है। चाहे उस भवन में रहने वाले दो-तीन ही व्यक्ति क्यों ही न हों। दूसरे कारों की बढ़ती संख्या ने भी शहरों क्या गाँवों-कस्बों में भी वायु-प्रदूषण की उल्लेखनीय वृद्धि कर दी है। एक-एक परिवार के प्रत्येक सदस्य के पास कार है। जिसके धुएँ और धूल-धक्कड़ से बच्चे, युवा, वयस्क और वृद्ध सभी कठिनाई में हैं। वायु प्रदूषण के कारण शहरों में श्वांस, अस्थमा, कैंसर आदि बीमारियाँ बढ़ रही हैं। वायु-प्रदूषण की समस्या से बचने के लिए बड़े-बड़े कारखानों से निकलने वाली गैसों का भी बहुत बड़ा हाथ है। सरकार को चाहिए कि वह बढ़ती कारों की संख्या पर नियंत्रण की ठोस नीति बनाए तथा कारखानों पर भी नियंत्रण करे। प्रदूषण को रोकने के लिए राष्ट्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड की स्थापना की गयी है, परंतु नौकरशाहों की अकर्मण्यता एवं भ्रष्टाचार के कारण उसके प्रदूषण विरोधी कार्यक्रम और प्रयास असफल हो रहे हैं।

वायु को शुद्ध रखने में वृक्षों का बहुत बड़ा हाथ है। इस संबंध में भारत के ऋषि-मुनि अधिक सतर्क थे। वे पृथ्वी पर अधिक से अधिक वृक्ष लगाने के लिए समाज को प्रोत्साहित करते थे। मत्स्य पुराण में कहा गया है कि दस कुँओं के बराबर एक बाबड़ी है, दस बाबड़ियों के बराबर एक पुत्र है तथा दस पुत्रों के समान एक वृक्ष है—

दशकूप-समावापी, दशवापी समोहदः ।

दशहद समः पुत्रोः दश पुत्रो समः द्रुमः ।

तीव्र औद्योगीकरण एवं पाश्चात्य भौतिक सभ्यता के प्रति आज हम वृक्षारोपण एवं वृक्ष संरक्षण के प्रति तनिक भी जागरूक नहीं है। सरकार के वन विभागों द्वारा करोड़ों वृक्ष लगाए जाते हैं, परंतु समस्या यह है कि उनमें से बच कितने पाते हैं। वायु-प्रदूषण से बचने के लिए देश के प्रत्येक नागरिक को अपना कर्तव्य निभाना चाहिए। वृक्षों की परवाह न करना स्थान-स्थान पर कचरा फेंकने से बचना चाहिए। कूड़ा कचरा भी अपनी दुर्गंध से वायु को प्रदूषित करता है।

तीव्र औद्योगीकरण एवं पाश्चात्य भौतिक सभ्यता के प्रति आज हम वृक्षारोपण एवं वृक्ष संरक्षण के प्रति तनिक भी जागरूक नहीं है। सरकार के वन विभागों द्वारा करोड़ों वृक्ष लगाए जाते हैं, परंतु समस्या यह है कि उनमें से बच कितने पाते हैं। वायु-प्रदूषण से बचने के लिए देश के प्रत्येक नागरिक को अपना कर्तव्य निभाना चाहिए। वृक्षों की परवाह न करना स्थान-स्थान पर कचरा फेंकने से बचना चाहिए। कूड़ा कचरा भी अपनी दुर्गंध से वायु को प्रदूषित करता है।

आज पृथ्वी को प्रदूषित करने की भी समस्या सामने आ रही है। भारत के ऋषि-मुनियों ने हमें

पृथ्वी को माता मानने की प्रेरणा दी थी क्योंकि उसके संसाधनों से हमें खाद्य-पदार्थ, फल, औषधियाँ आदि सभी कुछ मिलता है। अथर्ववेद में कही गयी यह उक्ति आज भारत में अत्यंत प्रसिद्ध एवं प्रचलित है, परंतु आधुनिक सभ्यता अब इसका पालन कहाँ करती है कि भूमि मेरी माता है और मैं पृथ्वी का पुत्र हूँ—

माता: भूमि: पुत्रो अहं पृथिव्या (12/1/12)

कुछ इसी प्रकार का संदेश यजुर्वेद देता है—

नमो नमो पृथिभ्यै नमो मात्रे पृथिव्या: (9/12)

ऋषि-मुनियों के आप्त वाक्य ऐसे थे जिन्होंने हमें पृथ्वी की पूजा करने की प्रेरणा दी-'भारत माता की जय' तथा बंकिमचंद चटर्जी का राष्ट्रीय गीत 'वंदे मातरम्' हमारे भारत माता के प्रति प्रेम और उसके प्रति निष्ठा की प्रेरणा है। परंतु आज का पश्चिमी सभ्यता में पला-बढ़ा समाज यह कहाँ समझता है। पृथ्वी के खनिजों की अंधाधुध खुदाई, कहीं भी पानी बहा देना, गंदा कूड़ा-कचरा फेंक देना, शौच करना, नालियों में कचरा फेंक देना, फल-सब्जियों को प्रदूषित पानी में उगाना और उन्हें धोकर बेचना आदि पृथ्वी को प्रदूषित करने के अनेक कारण हैं। भारतीय समाज को पृथ्वी को प्रदूषित न करने के लिए भी आज अधिक से अधिक प्रेरणा देने की अब आवश्यकता महसूस हो रही है ।

'यजुर्वेद' मे सारी सृष्टि में शांति रहने की कामना की गयी है—

द्यौ शांतिरन्तरिं ओम् शांति: पृथिवी शॉंतिराप: शान्तिरोषधय: शांति। वनस्पतय:शांतिविश्वदेवा:। शांतिर्ब्रह्म शांति: सर्वं ओम् शाँति: शाँतिरेव शाँति सा मा शाँन्तिरोधि:। (36-17)

पृथ्वी के खनिजों की अंधाधुध खुदाई, कहीं भी पानी बहा देना, गंदा कूड़ा-कचरा फेंक देना, शौच करना, नालियों में कचरा फेंक देना, फल-सब्जियों को प्रदूषित पानी में उगाना और उन्हें धोकर बेचना आदि पृथ्वी को प्रदूषित करने के अनेक कारण हैं। भारतीय समाज को पृथ्वी को प्रदूषित न करने के लिए भी आज अधिक से अधिक प्रेरणा देने की अब आवश्यकता महसूस हो रही है ।

ध्वनि प्रदूषण

परंतु आज भारत में स्थिति बिलकुल विपरीत है। सर्वत्र ध्वनि प्रदूषण से लोग परेशान हैं। लाउड स्पीकरों की ध्वनि, ब्याह-बरातों में लाउड-स्पीकरों की कानफोडू ध्वनि के साथ डीजे को जोर-जोर से बजाना एवं बसों और कारों में भी जोर-जोर से हार्न बजाने से अधिकांश लोग परेशान हो रहे हैं। अधिक समय तक शोरगुल के बीच रहने से अनेक लोग बहरे भी हो रहे हैं, पर इसकी परवाह हमको कहां है। देखा जाता है कि जो लोग मशीनों के बीच में काम करे हैं उन्हें एक समय के बाद कम सुनाई देने लगता है।

अत: अपना सुखद जीवन जीना है और स्वस्थ रहना है तो जल, वायु, पृथ्वी और ध्वनि प्रदूषण को कम करने के लिए व्यक्तिगत रूप से प्रयास करने होंगे तथा जनता को समझाना होगा।

लेखक दिल्ली पब्लिक लाइब्रेरी, दिल्ली के अध्यक्ष हैं।

डॉ बजरंग लाल गुप्ता जी की पुस्तक भारतीय सांस्कृतिक मूल्य एवं हिंदू अर्थचिंतन का विमोचन करते हुए।

निराशा में आशा का संदेश देती है भारतीय संस्कृति

डॉ.रवींद्र अग्रवाल

नई दिल्ली :आज भोगवाद की विकृति के कारण पूरा विश्व संकट के दौर से गुजर रहा है। सर्वत्र निराशा का महौल नजर आता है, परंतु इस निराशा के दौर में भी भारत की संस्कृति हमें निर्भयता का संदेश देती है। निर्भयता ही जीवन की उच्चतम अवस्था है। इसलिए हमें अपनी संस्कृति के प्रति विश्वास रखते हुए अपने परिवारों को संभालना होगा। परिवार संस्कारों से बचेंगे। इसलिए आज हम अपने परिवार और बच्चों को संस्कारित करने का संकल्प लें। यह बात जूना पीठाधीश्वर स्वामी अवधेशानंद गिरी जी ने मंगल सृष्टि न्यास द्वारा कांस्टीट्यूशन क्लब में आयोजित व्याख्यान- 'भारतीय संस्कृति की विश्व दृष्टि और वर्तमान संदर्भ' के अवसर पर कही।

उन्होंने कहा कि पश्चिमी जीवन निपट भोगवाद है, जबकि भारतीय जीवन पद्धति संयम पर आधारित है। पश्चिम ने सब चीज तोड़ दी है। उसकी दृष्टि में विश्व एक बाजार है, जबकि भारत कहता है कि विश्व एक परिवार है। हम धर्म की जय, प्राणियों में

दीप प्रज्जवलन करते हुए बायें से प्रो. मुरली मनोहर जोशी, स्वामी अवधेशानंद गिरि जी एवं डॉ. बजरंग लाल गुप्ता

जूना पीठाधीश्वर स्वामी अवधेशनंद गिरि जी

सद्भावना और विश्व के कल्याण की बात करते हैं। भोगवाद से बचने के लिए हमें अपनी जड़ों की ओर लौटना होगा। व्यक्ति को आध्यात्मिक बनाना होगा। उन्होंने कहा कि मैं व्यक्ति को आर्य बनाना चाहता हूँ, श्रेष्ठ बनाना चाहता हूँ। हम गिर नहीं सकते, हमारा भविष्य उज्जवल है, क्योंकि गिरता वह है जिसकी जड़ें खोखली होती हैं लेकिन हमारी जड़ें बहुत गहरी हैं और संस्कारों पर आधारित हैं। इसलिए आज आवश्यकता इस बात का है कि अपने परिवारों को संस्कारित करें। भारतीय संस्कृति यज्ञ संस्कृति है, इसलिए यज्ञ करें, अपने पर्वों व त्यौहारों का सम्मान करें। बच्चों को अक्षर वंदना कराएँ, अन्न पराशर संस्कार कराएँ, उन्हें गोत्र परंपरा का ज्ञान कराएँ। उन्हें अपने परिवार का गौरवशाली इतिहास बताएँ। घर में उत्सव होंगे तो सनातन परंपरा प्रवाहमान रहेगी।

उन्होंने कहा कि भारतीय संस्कृति प्रकृति से समन्वय की संस्कृति है, इसलिए प्रकृति से दूर न जाएँ। प्रकृति से दूर जाने का अर्थ है अपने स्वभाव से दूर जाना और अपने स्वभाव से दूर जाने का नाम ही भय है। इसलिए निर्भय होने के लिए अपनी संस्कृति और प्रकृति को अपनाएँ। उन्होंने कहा कि जो संस्कृति समन्वयमूलक होती है वह कभी नष्ट नहीं हो सकती। यही वह संस्कृति है जो सब में एक को देखती है, चिरंजीवी है, शाश्वत है और चिरंतन है।

इस अवसर पर पूर्व केंद्रीय मंत्री प्रो. मुरली मनोहर जोशी ने कहा कि हमने सृष्टि की आयु पश्चिम के हिसाब से नहीं मानी। पश्चिम मानता है कि सृष्टि की रचना ईसा से 4004 साल पहले हुई, जबकि भारतीय दृष्टि में काल गणना सृष्टि के प्रारंभ से मनन्वंतर और युगों में की गई है। पश्चिम ने माना है कि प्रभु ने मानव को यह कह कर भेजा है कि पृथ्वी उसके लिए बनाई है, इसलिए उसका भोग कर। इस भोगवाद से पृथ्वी पर प्रदूषण फैल गया। पश्चिम ने मनुष्य का खंड-खंड में, टुकड़ों में विचार किया गया, जबकि भारत ने मनुष्य को प्रकृति की सर्वश्रेष्ठ कृति माना है। खेद की बात है कि पश्चिम में मानव की श्रेष्ठता की चिंता नहीं की गई, जिससे

डॉ. मुरली मनोहर जोशी

डॉ. बजरंग लाल गुप्ता

एक बड़ी भयावह स्थिति बन रही है। आज पूरी दुनिया चकाचौंध के पीछे भाग रही है और सब कुछ ग्लोबल हो रहा है। विकास का अर्थ जीडीपी की वृद्धि को मान लिया गया है। यह एक शोषणकारी अर्थव्यवस्था है। इससे प्रकृति का क्षरण हो रहा है। जीडीपी बढ़ी तो अपराध बढ़ रहे हैं, लेकिन शिक्षा नहीं बढ़ रही है, शांति नहीं बढ़ रही है, भाईचारा नहीं बढ़ रहा है। इसके विपरीत भारत ने कहा कि प्रकृति के प्रति एकात्म दृष्टि चाहिए। हमारी दृष्टि यत् पिंडे तत् ब्रह्मांडे की है।

उन्होंने कहा कि हमें पश्चिम की खंडित दृष्टि को छोड़ कर एकात्म दृष्टि अपनानी होगी। अपनी सोच को बदलना होगा, जिससे समाज बदलेगा। यह सोच गलत है कि सब कुछ सरकार करेगी। हमें सोचना होगा कि हम क्या कर सकते हैं। हमें यह समझ लेना होगा कि जब तक प्रकृति रहेगी तभी तक मनुष्य रहेगा, जिस दिन प्रकृति नष्ट हो गई उस दिन मनुष्य भी नष्ट हो जाएगा।

व्याख्यान का विषय प्रवर्तन करते हुए मंगल सृष्टि न्यास के अध्यक्ष डॉ. बजरंग लाल गुप्ता ने कहा कि भारतीय संस्कृति पुरातन, चिरंतन, नूतन है। भारतीय संस्कृति स्थिर और ठहरी हुई नहीं है, वरन् वह प्रवाहमान और शाश्वत है। पश्चिम की सभ्यता खंडित सोच वाली है, जबकि भारतीय संस्कृति एकात्म है। 'एकोऽम् बहुस्याम्' तथा 'एकं सद् विप्रा बहुधा वदंति' भारतीय संस्कृति का मूल स्वर है और इसमें भौतिक उन्नति और आध्यात्मिक दृष्टि का सुमेल है।

कार्यक्रम का शुभारंभ स्वामी अवधेशानन्द गिरी, डॉ. मुरली मनोहर जोशी व डॉ. बजरंग लाल गुप्ता ने दीप प्रज्जवलित कर किया। इस अवसर पर डॉ. बजरंग लाल गुप्ता की पुस्तकों 'हिंदू अर्थचिंतन' और 'भारतीय सांस्कृतिक मूल्य' को लोकार्पण किया गया। इसके साथ ही 'मंगल विमर्श' के जनवरी, 2020 अंक 'पर्यावरण विशेषांक' व मगंल विमर्श के प्रधान संपादक ओमीश परुथी के काव्य संग्रह 'अस्ताचल के उजाले' का लोकार्पण भी किया गया।

'मंगल विमर्श' पत्रिका के पर्यावरण विशेषांक का लोकार्पण किया गया ।

मनोगत

मान्यवर,

सादर प्रणाम। आशा है आप अपने परिवार व इष्ट मित्रों सहित कुशल मंगल होंगे। कोरोना वायरस जनित महामारी से पूरा विश्व त्रस्त है। दुनियाभर के वैज्ञानिक और डॉक्टर अभी तक इसका कोई सार्थक निदान नहीं खोज पाए हैं। पूरे विश्व में अभी तक इसकी रोकथाम का एकमात्र उपाय लॉक डाउन ही है। भारत को भी 25 मार्च, 2020 से लॉक डाउन की घोषणा करनी पड़ी थी। इस महामारी का प्रकोप अभी तक नियंत्रित नहीं हुआ है, इसलिए सरकार को निरंतर लॉक डाउन की अवधि को बढ़ाना पड़ रहा है। यह स्थिति कब तक रहेगी, इस संबंध में कुछ भी कह पाना स्वास्थ्य विशेषज्ञों के लिए भी संभव नहीं है। लॉक डाउन लागू होते ही, एकाएक सभी प्रकार की गतिविधियाँ रुक गई थी, इसी कारण आपकी प्रिय पत्रिका 'मंगल विमर्श' का अंक उस समय प्रकाशित नहीं हो पाया था। भारत सरकार ने जैसे ही दैनंन्दिन जीवन की कुछ गतिविधियों को प्रारंभ करने की अनुमति दी, उसी के अनुरूप 'मंगल विमर्श' के प्रकाशन का कार्य भी प्रारंभ किया जा सका है। इसी कारण से यह अंक जून, 2020 में प्रकाशित किया गया है। आपके पास 'मंगल विमर्श' पत्रिका कोरियर सेवा द्वारा भेजी जाती है, लेकिन अभी तक कोरियर सेवा सुचारू रूप से प्रारंभ नहीं हो पाई हैं। इसलिए पत्रिका को कोरियर से भेज पाना संभव नहीं हो पा रहा है। पत्रिका आपको समय पर मिल सके, इस दृष्टि से आपके पास यह अंक आपके ई-मेल के पते पर भेजा जा रहा है। आपको इससे जो असुविधा होगी, उसके लिए 'मंगल विमर्श' परिवार आपसे क्षमा प्रार्थी है। अपेक्षा है कि आपका स्नेह और सहयोग पूर्ववत् बना रहेगा।

'मंगल विमर्श' के जनवरी-2020 पर्यावरण विशेषांक को विद्वतजनों व सुधी पाठकों ने बहुत अधिक सराहा है। पत्रिका के संबंध में आपकी प्रतिक्रियाएँ हमारा संबल तो होती ही हैं, इसके साथ ही वे हमारा मार्ग दर्शन भी करती हैं, जिससे हमें पत्रिका में आवश्यक सुधार करने में बहुत सुविधा होती है। आपसे अनुरोध है कि निस्संकोच भाव से अपनी प्रतिक्रियाएँ देते रहें। परमपिता परमेश्वर से प्रार्थना है कि वह आपको अपने परिवार व इष्ट-मित्रों के साथ कुशल मंगल रखे और कोरोना वायरस जनित इस महामारी पर विजय प्राप्त करने में हम सबकी सहायता करे।

भविष्य में भी आपका मार्गदर्शन व सहयोग प्राप्त होता रहेगा इसी आशा के साथ।

स्नेहाकांक्षी
आदर्श गुप्ता
प्रबंध संपादक

सहयोगी वृंद

1. **डॉ. शिव कुमार खंडेलवाल**
1064, सेक्टर-14,
सोनीपत, हरियाणा

2. **श्री विनोद बब्बर**
ए-2/9ए, हस्ताल रोड़
उत्तम नगर, नई दिल्ली - 110059

3. **डॉ. सुरेंद्र भटनागर**
4/186 ज्ञान मार्ग, पंचशील नगर,
अजमेर - 305009 (राजस्थान)

4. **श्री अतुल कोठारी**
सरस्वती बाल मंदिर, जी-ब्लॉक
नारायणा विहार, नई दिल्ली - 110028

5. **श्री दामोदर शांडिल्य**
2छ 26, टीचर्स कालोनी,
केशव पुरम्, कोटा, राजस्थान - 324009

6. **डॉ. मुकेश अग्रवाल**
22,कादंबरी अपार्टमेंट, सेक्टर -9,
रोहिणी, दिल्ली - 110085

7. **श्री हरि मोहन शर्मा**
बी -8/18 सेक्टर-4
रोहिणी, दिल्ली - 110085

8. **डॉ. प्रमोद दुबे**
4/47 एनसीआरटी कैंपस
श्री अरविंदो मार्ग, नई दिल्ली

9. **श्री नरेंद्र कोहली**
175, वैशाली, पीतम पुरा
नई दिल्ली - 110034

10. **श्री प्रमोद शास्त्री**
मकान नं. 59, गली नं. 2,
प्रेम नगर, शक्ति नगर,
दिल्ली - 110007

11. **श्री आलोक पुराणिक**
मकान नं. एफ-1, प्लाट नं. बी-39
रामप्रस्थ कालोनी,
गाजियाबाद- 201011 (उ.प्र.)

12. **श्री महेश शर्मा**
53, सेक्टर-12, आर. के. पुरम्,
नई दिल्ली - 110022

13. **श्री आर. के. शर्मा**
19 साउथ एवेन्यू,
नई दिल्ली- 110011

मंगल विमर्श
सदस्यता -प्रपत्र

मंगल विमर्श **त्रैमासिक पत्रिका**

मुख्य संरक्षक
डॉ. बजरंग लाल गुप्ता

प्रधान संपादक
ओमीश परुथी

संयुक्त संपादक
डॉ. रवींद्र अग्रवाल

प्रबंध संपादक
आदर्श गुप्ता

सदस्यता -शुल्क

10 वर्षों के लिए
₹2000 मात्र

पत्रिका सदस्यता शुल्क हेतु
मंगल सृष्टि (Mangal Srushti)
के नाम चैक/ड्राफ्ट सी-84, अहिंसा विहार,
सेक्टर-9, रोहिणी, दिल्ली- 110085 पर भेजें।
फोन नं. +91-9811166215,
+91-11-42633153

मंगल विमर्श की..... वर्षों की सदस्यता हेतु.....

रुपये का ड्राफ्ट/चैक क्रं. ..... दिनांक.....

बैंक..... भेज रहे हैं,

कृपया..... वार्षिक सदस्य बनाने का कष्ट करें।

नाम.....

पता.....

.....

..... पिनकोड .....

फोन :..... मोबाइल:.....

इ-मेल.....

ई-मेल mangalvimarsh@gmail.com **वेब साइट** www.mangalvimarsh.in